CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust eGangotri

Ganesh Varni Digamber Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

7·6

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री गणेशप्रसाद वर्णी दि० जैन ग्रन्थमाला, पुष्प : ३१

श्रीमद्-योगीन्दुदेव-विरचित

योगसार

[पं० पन्नालाल चौधरी कृत देशभाषा वचनिका सहित]

सम्पादक एवं अनुवादक

डॉ० कमलेशकुमार जैन

जैनदर्शन-प्राध्यापक

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी।

प्रकाशक

श्री गणेश वर्णी दि० जैन संस्थान

वाराणसी।

वी० नि० सं० २५१४] [ई० १९८७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थमाला सम्पादक :

डॉ० राजाराम जैन

यूनिवर्सिटी प्रोफेसर (प्राकृत) एवं
अध्यक्ष, संस्कृत-प्राकृत विभाग
ह० दा० जैन कालेज, आरा (बिहार)

प्रो० उदयचन्द्र जैन

पूर्व अध्यक्ष, दर्शन विभाग
संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ।

प्रकाशक :

© श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान
नरिया, वाराणसी—२२१००५
(उत्तर प्रदेश)

प्रथम संस्करण : १९८७

११०० प्रतियाँ

२२) रुपयें मात्र

मूल्य : पुस्तकालय संस्करण : पच्चीस रुपये
~~साधारण संस्करण : [illegible] रुपये~~

मुद्रक :

संतोषकुमार उपाध्याय
नया संसार प्रेस, भदैनी, वाराणसी—१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Shri Ganesh Prasad Varni Dig. Jaina Granthamālā, No. : 31

YOGĪNDUDEVA'S

YOGASĀRA

[With Deśabhāṣā Vachanikā by Pt. Pannā Lāl Chaudhari]

Edited & Translated by

Dr. Kamalesh Kumar Jain

Lecturer in Jainadarśana

Banaras Hindu University

Varanasi

Published by

SHRI GANESH VARNI D. J. SANSTHAN

VARANASI

V. N. S. : 2514]

[1987 A. D.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

General Editors
Dr. Rajaram Jain
University Prof. of Prakrit
and Head of the Dept. of
Sanskrit & Prakrit
Magadh University P. G. Centre
H. D. Jain College, Arrah (Bihar)

Prof. Udaychandra Jain
Ex-Head of the Dept. of Darshan
Faculty of Sanskrit Learning & Theology
B. H. U. Varanasi.

Published by
© Shri Ganesh Varni Dig. Jain Sansthan
Naria, Varanasi–221005

First Edition : 1987
1100 Copies
Price : Library Edition Rs. 25.00 Only
General Edition Rs. 15.00 Only

Printed by
Santosh Kumar Upadhyay
Naya Sansar Press
Bhadaini, Varanasi.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन कर्म सिद्धान्त के प्रौढ़ विद्वान्
अभिनव टोडरमल
श्रद्धेय पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्ताचार्य
को
सविनय समर्पित

श्रद्धावनत :
कमलेशकुमार जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय का

आशीर्वचन

डॉ० कमलेशकुमार जैन द्वारा सम्पादित एवं अनूदित योगसार के संस्करण को देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ। लेखक ने इसे तैयार करने में बड़ा परिश्रम किया है और इस आध्यात्मिक ग्रन्थ के रहस्यों को समझाने में आपने अभी तक अप्रकाशित प्राचीन टीका को आधार मानकर जो कार्य किया है, वह नितान्त महत्त्वपूर्ण, उपादेय तथा प्रामाणिक है।

जैन साहित्य का यह मूल ग्रन्थ अपनी गम्भीर विचारधारा के कारण विद्वानों तथा अध्यात्म-रसिकों में विशेष प्रख्यात रहा है। यह ग्रन्थ गम्भीर अर्थ का विवेचन करता है और ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है, जो मौलिक हैं तथा अपनी गम्भीरता के कारण जैन पण्डितों का ध्यान सदा आकृष्ट करते रहे हैं। ऐसे अनुपम ग्रन्थ का यह सुलभ तथा प्रामाणिक विवेचन जिज्ञासुओं की ज्ञान-पिपासा सर्वथा तथा सर्वदा तृप्त करता रहेगा, मुझे पूरी आशा है।

मैं लेखक से आग्रह करता हूँ कि इसी तरह की सुन्दर रचनायें प्रस्तुतकर ये जैन साहित्य के भण्डार को भरते रहेंगे।

विद्या विलास
रवीन्द्रपुरी, वाराणसी
२१ दिसम्बर; ८७

बलदेव उपाध्याय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय

श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान के अन्तर्गत श्री गणेशप्रसाद वर्णी दि० जैन ग्रन्थमाला द्वारा इतः पूर्व तीस ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। जिनमें से कुछ ग्रन्थों के तो तीन-तीन, चार-चार संस्करण भी निकल चुके हैं; जो संस्थान के प्रकाशनों की लोकप्रियता के परिचायक हैं।

सम्प्रति इकतीसवें ग्रन्थ के रूप में योगीन्दुदेव विरचित योगसार को सुधी पाठकों के हाथों में सौंपते हुये हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। प्रस्तुत संस्करण में पं० पन्नालाल चौधरी द्वारा योगसार पर लिखी गई देशभाषा वचनिका का प्रथम बार प्रकाशन हो रहा है, जो जैन विद्वानों द्वारा प्राचीन सिद्धान्त ग्रन्थों पर लिखी गई वचनिकाओं की शृंखला में महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

सम्पादक ने अपनी शोध-खोज पूर्ण विस्तृत प्रस्तावना में योगसार पर उपलब्ध बहुविध सामग्री का उपयोग करते हुये ग्रन्थ, ग्रन्थकार एवं वचनिका-कार से सम्बद्ध विविध पहलुओं पर तलस्पर्शी विवेचन प्रस्तुत किया है। जिससे इस दिशा में कार्य करने वाले विद्वानों को लाभ मिलेगा।

संस्थान के संस्थापक एवं बहुश्रुत विद्वान् श्रद्धेय पण्डित फूलचन्द्र जी सिद्धान्ताचार्य इस वृद्धावस्था में भी संस्थान की प्रगति के लिये निरन्तर चिन्तित रहते हैं और समय-समय पर हमें पत्राचार के माध्यम से सुझाव एवं निर्देश देते रहते हैं। साथ ही आर्थिक सहायता भिजवाने में भी संस्थान का पूरा सहयोग करते रहते हैं। अभी कुछ महीनों पूर्व उन्होंने दिगम्बर जैन स्वाध्याय मण्डल कानपुर से अठारह हजार रुपये की एकमुश्त राशि भिजवाकर संस्थान को आर्थिक सम्बल प्रदान किया है। अतः हम श्रद्धेय पूज्य पण्डित जी के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हुये उनके दीर्घायुष्य की मंगल-कामना करते हैं।

समाज के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् एवं ग्रन्थमाला सम्पादक प्रो० डॉ० राजाराम जैन (आरा) एवं प्रो० उदयचन्द्र जैन (वाराणसी) का प्रकाशन सम्बन्धी कार्यों में हमें निरन्तर सहयोग प्राप्त है। साथ ही उन्होंने महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय लिखने की कृपा की है। अतः उक्त ग्रन्थमाला-सम्पादकों के हम हृदय से आभारी हैं।

संस्थान के प्रबन्धक डॉ० अशोककुमार जैन सम्प्रति अमेरिका प्रवास में रहते हुये भी संस्थान के बहुमुखी विकास में रुचि लेते रहते हैं; अतः वे धन्यवादार्ह हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत जगत् के ख्यातिप्राप्त विद्वान् एवं भारत सरकार के विशिष्ट अलंकरण 'पद्मभूषण' से विभूषित श्रद्धेय आचार्य बलदेव उपाध्याय ने आशीर्वचन लिखकर हमारा उत्साहवर्द्धन किया है, अतः हम उनके प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में संस्थान के वर्तमान उपाध्यक्ष श्रीमान् सवाई सिंघई धन्यकुमार जैन, महावीर कीर्तिस्तम्भ, कटनी (म० प्र०) ने एक हजार रुपये की सहायता प्रदान की है, अतः इस आर्थिक औदार्य के लिये हम उनके हृदय से आभारी हैं।

इस वर्ष मैं पर्यूषण पर्व में दिगम्बर जैन समाज, मीठापुर, पटना (बिहार) के विशेष आग्रहपूर्ण निमन्त्रण पर पटना गया था। अतः वहाँ की जैन समाज ने भी इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु चार सौ चौवन रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान की है, एतदर्थ दिगम्बर जैन समाज पटना के भी हम आभारी हैं।

प्रकाशन कार्यों में संस्थान के पूर्व व्यवस्थापक श्री पूरनचन्द्र जैन (सम्प्रति संस्कृत प्रवक्ता, ब्राह्मी विद्यापीठ, लाडनूं, राज०) का सहयोग मिला है और मुद्रण कार्य नया संसार प्रेस के मालिक श्री सन्तोषकुमार उपाध्याय ने तत्परतापूर्वक किया है। अतः इन दोनों मित्रों को हम हृदय से धन्यवाद देते हैं।

निर्वाण भवन
बी० २/२४९, लेन नं० १४
रवीन्द्रपुरी, वाराणसी।
२५ दिसम्बर, १९८७

डॉ० कमलेशकुमार जैन
संयुक्तमंत्री
श्री गणेश वर्णी दि० जैन संस्थान
नरिया, वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पादकीय

अपभ्रंश की प्रमुख चार विधाओं में से उसकी आध्यात्मिक-साहित्य-विधा को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। प्राच्यविद्याविदों ने उसे रहस्यवादी काव्य-विधा की संज्ञा प्रदान की है। प्रस्तुत योगसार (जोयसारु) संयोग से परमप्पयासु (परमात्मप्रकाश) के साथ ही साथ उक्त विधा की आद्य रचना के रूप में स्वीकृत एवं सम्मानित है। यद्यपि आचार्य कुन्द-कुन्द (प्रथम सदी ईस्वी) एवं आचार्य पूज्यपाद-देवनन्दि (छठवीं सदी ईस्वी) का उक्त रचना पर प्रभाव परिलक्षित होता है, फिर भी योगसार की विषय-प्रतिपादन-शैली नवीन, मौलिक, मार्मिक, लोकभाषा में लिखित तथा सहजगम्य होने के कारण वह युगों-युगों से मुमुक्षुओं के गले का हार बना रहा है।

यही नहीं, आचार्य हेमचन्द्र (१२ वीं सदी ईस्वी) द्वारा लिखित अपभ्रंश व्याकरण के पूर्व की रचना होने के कारण भी उक्त योगसार अपभ्रंश की प्रारम्भिक किन्तु स्वतन्त्र एवं सुव्यवस्थित रचना है। अतः वह अपभ्रंश-साहित्य का आद्य गौरव ग्रन्थ है। इसी कारण से वह अपभ्रंश-भाषा के उद्भव एवं विकास तथा उसके भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन के लिए मूल-स्रोत भी प्रदान करता है। एक ओर यह रचना लोकभाषा में पूर्वागत जैन रहस्यवाद के अध्ययन का द्वार उद्घाटित करती है तो दूसरी ओर आधुनिक भारतीय साहित्य की रहस्यवादी विचारधारा तथा हिन्दी की दूहा-शैली के उद्भव एवं विकास के अध्ययन के लिए भी बीज-सूत्र प्रदान करती है।

योगसार का मुख्य विषय है—आत्म-रहस्य का विवेचन। उसमें निश्चयनय की दृष्टि से स्वात्म को परमात्मा के सदृश मानकर उसके एकाग्रतापूर्वक ध्यान करने का उपदेश दिया गया है और स्वात्मानुभव को ही मोक्षमार्ग की संज्ञा प्रदान की गई है। समस्त रचना दूहा-शैली में ग्रथित है।

प्रस्तुत योगसार के लेखक का नाम जोइंदु है। अनेक प्राचीन कवियों की भाँति जोइंदु भी अपने इतिवृत्त के विषय में मौन हैं, किन्तु अनेक प्रशंसकों एवं टीकाकारों ने उन्हें योगीन्द्रदेव (ब्रह्मदेव, १३ वीं सदी ईस्वी); योगीन्द्र देव भट्टारक (श्रुतसागर, १६ वीं सदी ईस्वी), योगीन्द्राचार्य (पं० दौलतराम काशलीवाल, ईस्वी की १८ वीं सदी) तथा योगीन्द्र मुनिराज (मुंशी नाथूराम ईस्वी की २० वीं सदी) के रूप में स्मरण किया है। उन नामोल्लेखों में कवि के मूल नाम के साथ 'इन्द्र'; 'भट्टारक' एवं 'देव' विशेषण प्रशंसकों की केवल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रद्धा-भक्ति के ही द्योतक हैं, क्योंकि कवि का यथार्थ नाम योगिचन्द्र (दे० योगसार गाथा सं० १०८) है। उसी से अपभ्रंश-भाषा के नियमानुसार योगीन्द्र > जोगिचन्द्र > जोइ + इंदु > जोइंदु नाम बना तथा सरल, सुकुमार एवं श्रुतिमधुर होने से कवि का जोइंदु नाम ही परवर्ती कालों में लोकप्रिय होता गया। जोइंदु के योगेन्द्र अथवा योगीन्द्र जैसे पर्यायवाची नाम भ्रमात्मक हैं और विविध जटिलताएँ उत्पन्न करने वाले हैं। कुछ विचारक योगिचन्द्र को किसी कवि का विशेषण भी मानते हैं, किन्तु यह धारणा भी उपयुक्त नहीं, क्योंकि योगसार में जोगिचंद को स्पष्टरूप से ही 'मुनि' कहा है (दे० गाथा सं० १०८)।

विभिन्न अन्तर्बाह्य साक्ष्यों के आधार पर जोइंदु का समय ईसा की छठवीं सदी सिद्ध होता है। इस विषय पर प्रो० डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने विस्तृत प्रकाश डाला है (दे० परमात्मप्रकाश की अंग्रेजी प्रस्तावना, पृ० ६३-६७)। उनकी (१) परमात्मप्रकाश (अपभ्रंश), (२) योगसार (अपभ्रंश), (३) नवकार श्रावकाचार (अपभ्रंश), (४) अध्यात्म सन्दोह (संस्कृत), (५) सुभाषित तन्त्र (संस्कृत) एवं (६) तत्त्वार्थ टीका (संस्कृत) नामक रचनाएँ ज्ञात हुई हैं, जिनमें से प्रथम दो रचनाएं ही अद्यावधि प्रकाशित हो सकी हैं।

हमारी जानकारी के अनुसार अभी तक योगसार के तीन संस्करण प्रकाश में आए हैं। प्रथम संस्करण श्री राय चन्द्र जैन शास्त्र माला बम्बई से (सन् १९३७ में) प्रकाशित हुआ, जिसका सम्पादनादि प्रो० डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने किया था, उसमें पं० (अब डॉ०) जगदीशचन्द्र जैन कृत मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद उपलब्ध है। दूसरा संस्करण गुना, मध्यप्रदेश से सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ, जिसका सम्पादन कर उसकी विस्तृत हिन्दी टीका ब्रह्म० शीतलप्रसाद जी ने लिखी। तीसरा संस्करण भी उपर्युक्त स्थान एवं वर्ष में हुआ। इसमें मुंशी नाथूराम कृत मूलानुगामी हिन्दी पद्यनुवाद मात्र 'अध्यात्म संग्रह' के नाम से प्रकाशित हुआ। वर्तमान में उक्त सभी प्रकाशन दुर्लभ हैं। अतः प्रस्तुत संस्करण अपनी कुछ विशेषताओं के साथ श्री गणेश वर्णी दि० जैन संस्थान द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है।

वर्णी संस्थान डॉ० कमलेशकुमार जैन के प्रति अपना आभार व्यक्त करता है, जिन्होंने योगसार की हस्तलिखित प्रति का सुयोग्य सम्पादन कर उसका मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद एवं मूल्यांकन किया। विश्वास है कि संस्थान के सारस्वत-कार्यों में आगे भी उनका इसी प्रकार का सहयोग मिलता रहेगा।

प्रो० डॉ० राजाराम जैन
प्रो० उदयचन्द्र जैन
ग्रन्थमाला सम्पादक

दीपावली
२-११-८६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

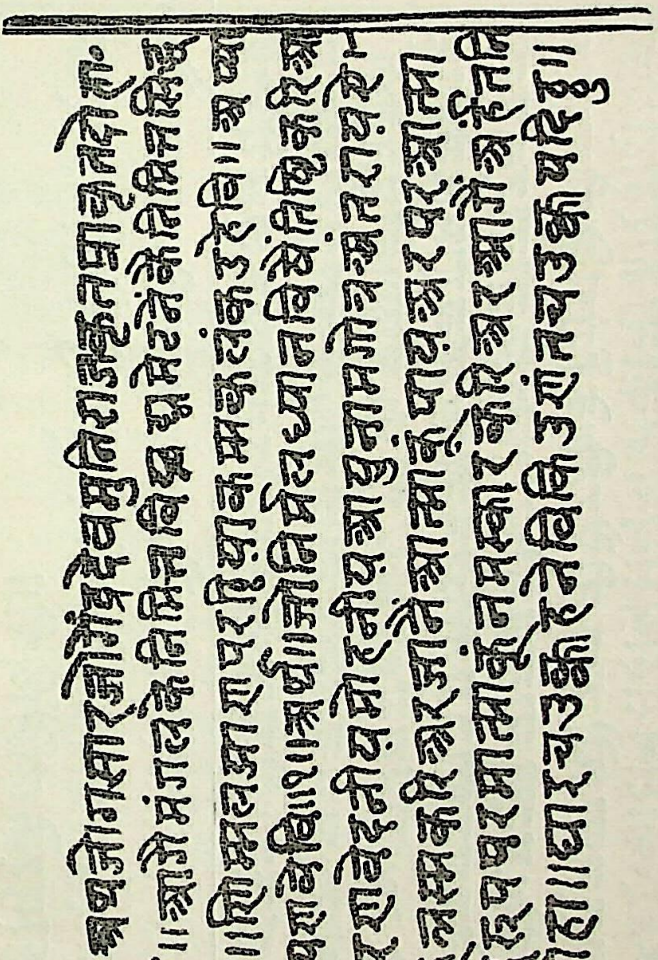

योगसार की हस्तलिखित 'मि०' प्रति के प्रथम पत्र का प्रथम पृष्ठ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

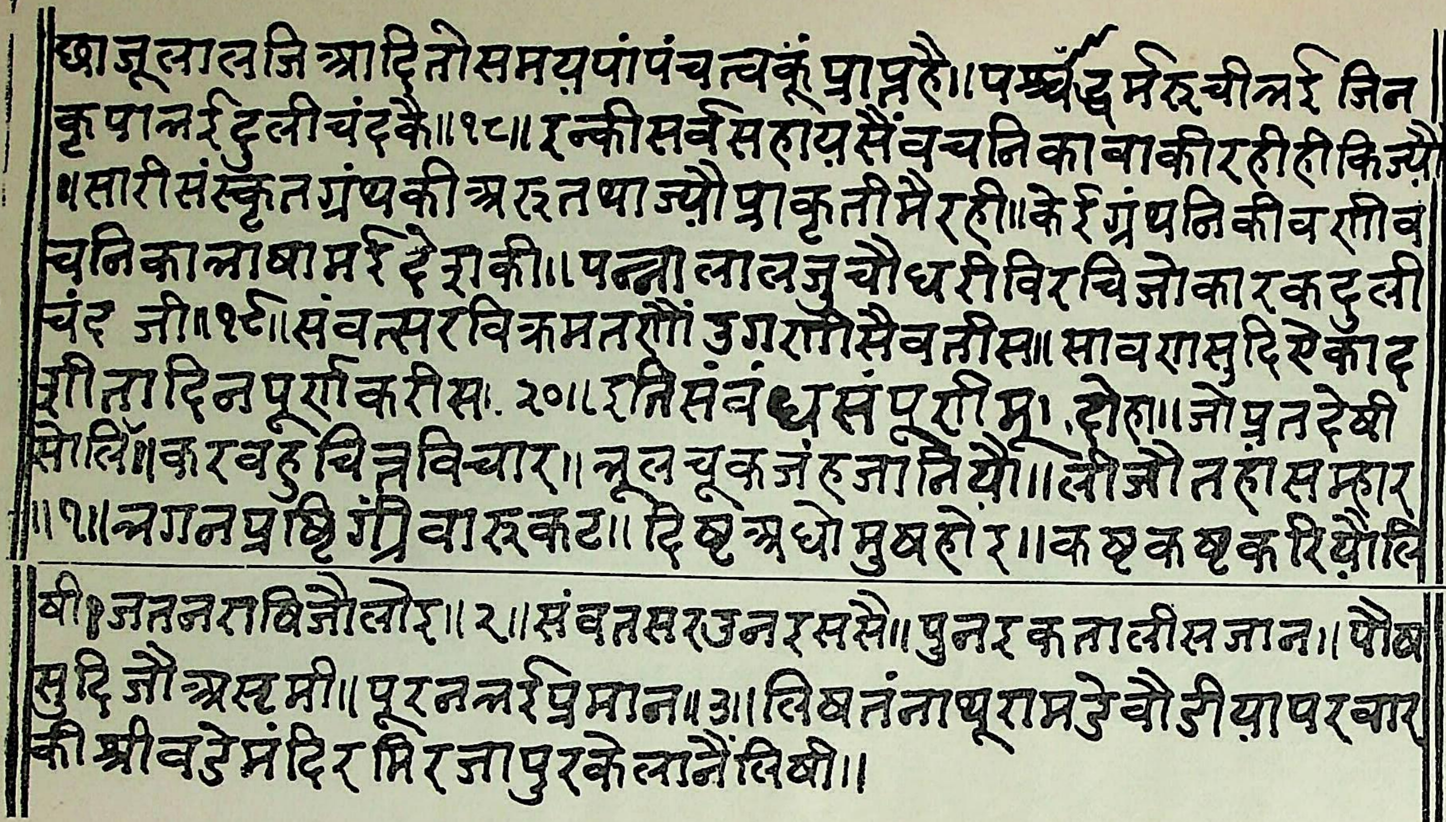

छाजूलालजि आदि तो समय पांपंचत्वकूं प्राप्त है।। पश्चैं दुमेरुचील्लई जिन
कृपाल्लई दुलीचंदकै।।१८।। इन्की सर्व सहाय सैं वचनिका बाकी रही ही किज्यौं
।।सारी संस्कृत ग्रंथकी अरथ तथा ज्यौ प्राकृती मैं रही।। केई ग्रंथनिकी वरीव
चनिका भाषामई देशकी।। पन्नालालजु चौधरी विरचि जो कारक दुली
चंद जी।।१९।। संवत्सर विक्रम तणों उगणीसै बतीस।। सावणसुदि एकाद
शी ता दिन पूर्ण करीस।। २०।। इति संबंध संपूर्णम्।। दोहा।। जो प्रत देखी
सो लिखी।। कर बहु चित्त विचार।। भूलचूक जंह जानियौ।। सौ जो तहां समार
।।१।। नगन पृष्ठि ग्रीवा रु कटि।। दिष्ट अधो मुषहोर।। कष्ट कष्ट करि यौं लि

षी।। जतन राखिजौ लोर।।२।। संवतसर उनइससै।। पुनर कतालीस जान।। पोष
सुदि जो असटमी।। पूरन भई प्रमान।।३।। लिषतं नाथूराम डेचोडीया परवार
की श्री वडे मंदिर मिरजापुर केलानें लिषी।।

योगसार की हस्तलिखित 'मि०' प्रति के अन्तिम पत्र का प्रथम एवं द्वितीय पृष्ठ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयानुक्रमणिका

आशीर्वचन	७
प्रकाशकीय	९
सम्पादकीय	११
हस्तलिखित प्रति के प्रथम पत्र का प्रथम पृष्ठ	१३
हस्तलिखित प्रति के अन्तिम पत्र के प्रथम एवं द्वितीय पृष्ठ	१४
प्रस्तावना :	१७
योगसार	१७
विविध संस्करण	१७
प्रस्तुत संस्करण	१८
सम्पादन परिचय :	१८
(क) प्रति परिचय	१८
(ख) सम्पादन की विशेषताएँ	१९
पाठालोचन	१९
वचनिका	२१
अनुवाद	२३
परिशिष्ट	२४
आध्यात्मिक विकास-क्रम	२४
ग्रन्थ का नामकरण	२५
विषय की पुनरुक्ति	२५
प्रतिपाद्य विषय :	२६
मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञा	२६
धर्म का स्वरूप	२६
रत्नत्रय	२६
आत्मतत्त्व	२६
अनुप्रेक्षा	२८
सम्यग्दर्शन	२८
मोक्ष के हेतु एवं मोक्ष-सुख	२९
संसार दशा	२९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्ध और मोक्ष	२६
पुण्य और पाप	२६
ध्यान	३०
सिद्ध और भिक्षाटन	३०
मिथ्यादृष्टि के व्रत-तप	३०
निश्चय और व्यवहार	३१
चारित्र	३१
ग्रन्थकार : योगीन्दुदेव	३२
काल निर्धारण	३३
कृतियाँ :	३८
परमात्मप्रकाश	३६
योगसार	३६
कथन शैली	३६
उपमाएँ एवं उनका प्रयोग	३६
छन्द योजना :	३६
दोहा	३६
सोरठा	४०
चौपाई	४०
वचनिका एवं वचनिकाकार	४०
वचनिका	४१
वचनिकाकार	४१
अन्तिम प्रशस्ति	४२
उपसंहार	४२
आभार-दर्शन	४३
सन्दर्भ-ग्रन्थ	४४
मूल ग्रन्थ एवं वचनिका	१
हिन्दी अनुवाद	४०
पद्यानुक्रमणिका	५२
शब्दानुक्रमणिका	५४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तावना

योगसार :

'योगसार' अपभ्रंश भाषा में रचित एक आध्यात्मिक लघुकृति है। इसके रचयिता योगीन्दुदेव हैं। योगसार के उल्लेखानुसार इनका नाम जोगिचन्द[1] (सं० योगिचन्द) है। इन्होंने यह कृति आत्म-सम्बोधन के निमित्त लिखी है।[2] इस ग्रन्थ में १०८ पद्य हैं, जिनमें एक चौपाई[3], तीन सोरठा[4] और शेष १०४ दोहे हैं।

विविध संस्करण :

१. योगीन्दुदेव विरचित इस योगसार का सम्पादन सर्वप्रथम पं० पन्नालाल सोनी ने सन् १६२२ (विक्रमाब्द १६७६) में संस्कृत छाया के साथ किया था। इसका प्रकाशन माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला (बम्बई) द्वारा प्रकाशित 'सिद्धान्तसारादिसंग्रह' के अन्तर्गत (पृष्ठ ५५ से ७४ तक) हुआ है। इस संस्करण के मूलपाठ में मात्र १०७ दोहे हैं तथा दोहा अनुक्रमाङ्क ३८ के पश्चात्—"केवलणाणु सहाउ..." इत्यादि दोहा टिप्पण में दिया है। इसे मिलाने पर कुल १०८ दोहे होते हैं।

२. सन् १६३७ में डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने भी इस योगसार का सम्पादन किया था तथा हिन्दी अनुवादक थे डॉ० जगदीशचन्द्र जैन। इसका प्रकाशन परमात्मप्रकाश के साथ राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला के अन्तर्गत अगास (गुजरात) से हुआ है।

३. स्व० ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद ने योगसार पर एक विस्तृत हिन्दी व्याख्या लिखी थी, जो गुना (म० प्र०) से 'योगसार टीका' के नाम से प्रकाशित है। इस व्याख्या में अनेक प्राचीन ग्रन्थों से उद्धरण प्रस्तुत कर विषय को स्पष्ट किया गया है। इसी संस्करण में योगसार का श्री नाथूरामकृत हिन्दी पद्यानुवाद भी 'अध्यात्मसंग्रह' (पृष्ठ २७३ से २६६ तक) के नाम से दिया गया है।

---

१. संसारहँ भयभीयएण जोगिचंद मुणिएण।
अप्पा संबोहण कया दोहा एक्क-मणेण ॥ —योगसार, दोहा १०८

२. वही, दोहा ३,१०८।

३. वही, पद्य संख्या ४०।

४. वही, पद्य संख्या ३८, ३६; ४७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तुत संस्करण :

योगसार पर वि० सं० १६३२ में पं० पन्नालाल चौधरी ने ढूंढारी भाषा में वचनिका लिखी थी। इस संस्करण में उसका सर्वप्रथम प्रकाशन हो रहा है।

यह वचनिका पं० टोडरमल, पं० सदासुखदास, पं० जयचन्द छावड़ा आदि द्वारा प्राचीन सिद्धान्त-ग्रन्थों पर लिखी गई वचनिकाओं की शृङ्खला में अगली कड़ी है। हिन्दी भाषा के विकास की दृष्टि से इन वचनिकाओं का विशेष महत्त्व है। इसलिये इसका प्रकाशन आवश्यक माना गया।

इन्हीं बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुये हमने प्रस्तुत संस्करण में योगसार के अपभ्रंश मूलपाठ के साथ देशभाषा वचनिका को दिया है। अन्त में खड़ी बोली में मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद भी दे दिया है।

सम्पादन परिचय :

(क) प्रति परिचय :

प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादन में निम्नलिखित दो प्रतियों का उपयोग किया गया है—

(१) 'मि०' प्रति—यह मोटे एवं पुष्ट कागज पर लिखी गई हस्तलिखित प्रति है। इसमें मूल अपभ्रंश दोहों के साथ पं० पन्नालाल चौधरी कृत देशभाषा वचनिका का समावेश किया गया है। अन्त में वचनिकाकार ने विभिन्न २० छन्दों में प्रशस्ति लिखी है। सबसे अन्त में लिपिकार ने तीन दोहों में प्रतिलिपि के लेखनकाल आदि की सूचना दी है। यह प्रति श्री दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर, मिरजापुर (उ० प्र०) से प्राप्त हुई है। इसमें कुल ३६ पत्र हैं। इनमें से प्रथम पत्र का प्रथम पृष्ठ खाली है। अन्तिम छत्तीसवें पत्र के दूसरी ओर मात्र ढाई पंक्तियाँ लिखी हैं। शेष सभी पत्रों में दोनों ओर लिखा गया है। इस प्रकार कुल ७१ पृष्ठों में ग्रन्थ लेखन का कार्य सम्पन्न हुआ है। प्रत्येक पत्र की लम्बाई २७$\frac{1}{2}$ सेण्टीमीटर और चौड़ाई १२ सेण्टीमीटर है। प्रत्येक पत्र के दोनों ओर ८-८ (एक पत्र में दोनों ओर कुल १६) पंक्तियाँ लिखी गई हैं। प्रत्येक पंक्ति में २८ से लेकर ३० अक्षरों तक का समावेश है। २० वें पत्र के दूसरी ओर ऊपर, नीचे एवं बगल में छूटा हुआ अंश लिखा गया है। २८ वें पत्र के प्रथम पृष्ठ की अन्तिम दो पंक्तियाँ कटी हैं। ये पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ के मध्य में २१ सेण्टीमीटर की लम्बाई एवं ८ सेण्टीमीटर की चौड़ाई में लिखी गई हैं। इस प्रकार वचनिका सहित पूरा ग्रन्थ लगभग ५११ अनुष्टुप् श्लोक प्रमाण है। अक्षरों की लिखावट सुन्दर एवं सहज पठनीय है। इसका संकेत 'मि०' दिया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस हस्तलिखित प्रति के अन्त में प्रति लेखनकाल इस प्रकार दिया गया है—

> **संवतसर उंनइससै पुन इकतालीस जान।**
> **पौष सुदि जौ अस्टमी पूरन भई प्रमान ॥**

लिखितं नाथूराम डेवौढ़िया परवार की श्री बड़े मन्दिर मिरजापुर के लानैं लिखी ॥

इससे स्पष्ट होता है कि यह प्रतिलिपि श्री नाथूराम डेवड़िया ने वि० सं० १९४१ की पौष शुक्ला अष्टमी को मिरजापुर के बड़े मन्दिर के लिये की थी।

(२) 'आ०' प्रति—यह मुद्रित प्रति है। इसका सम्पादन डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने चार हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर पाठान्तरों के साथ किया है। इसका प्रकाशन श्रीमद् राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला के अन्तर्गत अगास (गुजरात) से सन् १९३७ में परमात्मप्रकाश के साथ हुआ है। इसका संकेत 'आ०' दिया है।

(ख) सम्पादन की विशेषताएँ :

सम्पादन में हमने जिन मानदण्डों को स्वीकार किया है, वे इस प्रकार हैं-

पाठालोचन—१. मूलपाठों के निर्धारण में सामान्यतः उन्हीं पाठों को स्वीकार किया गया है, जिनको आधार मानकर पं० पन्नालाल चौधरी ने देशभाषा वचनिका लिखी है। तुलनात्मक दृष्टि से निम्नलिखित पाठ द्रष्टव्य हैं—

दोहा क्रमाङ्क	सम्पादन में स्वीकृत पाठ	डॉ० उपाध्ये का पाठ
४३	जिणु	जणु
६१	नियंविणी	नियं वि ण
७२	हवंति ण णाणि	हवंति हु णाणि
८४	तित्थय उत्तु	तित्थु पवित्तु
८५	जीव	जोइ
८६	सिवसिद्धि	सिवसुद्धि
९४	गुण-णिम्मलउ	गुण-गण-णिलउ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. हस्तलिखित 'मि०' प्रति में लिपिकार की असावधानी अथवा जिस प्रति से इसकी प्रतिलिपि की गई है, उसमें मूल एवं वचनिका के पाठ अशुद्ध होने से अनेक पाठों में जो मात्रागत अशुद्धियाँ रह गई थीं, उनका डॉ० उपाध्ये के संस्करण को आधार मानकर संशोधन किया है। यथा—ऐ को ए, ऊ को उ आदि। इसी प्रकार जो 'च्' छूटा था, उसकी पूर्ति की है। यथा—मिछा को मिच्छा (६), इछा को इच्छा (१३); णिछय को णिच्छय (१६) आदि। कहीं-कहीं अनुस्वार को अर्द्धचन्द्रबिन्दु में परिवर्तित किया गया है।

३. 'मि०' प्रति में छूटे पाठों की पूर्ति डॉ० उपाध्ये के संस्करण से कर दी है। उदाहरणार्थ—दोहा अनुक्रमाङ्क ४१ में 'अप्पा'; ४३ में 'देहा', ६७ में 'सुहु'; ८६ में 'रमइ' आदि जो पाठ छूट गये थे, उनकी पूर्ति की है।

४. 'मि०' प्रति के कुछ पाठ डॉ० उपाध्ये द्वारा स्वीकृत पाठों की अपेक्षा अधिक शुद्ध प्रतीत होते हैं। अतः उनका यथास्थान समावेश किया गया है। यथा 'आ०' प्रति में डॉ० उपाध्ये ने दोहा क्रमाङ्क ६ में 'पर जायहि' (संस्कृत छाया—परं ध्याय) पाठ रखा है। इसके स्थान पर 'मि०' प्रति में जो 'पर झायहि' पाठ दिया है, वह अधिक शुद्ध है। इसी प्रकार 'आ०' प्रति के दोहा क्रमाङ्क ७० में स्वीकृत 'जइ' पाठ की अपेक्षा 'मि०' प्रति का 'जाइ' पाठ और 'आ०' प्रति के दोहा क्रमाङ्क ७५ के 'सो जि हउँ' पाठ की अपेक्षा 'मि०' प्रति का 'सो हि जिउ' पाठ अधिक शुद्ध एवं तर्कसंगत प्रतीत होता है।

५. 'आ०' प्रति में दोहा क्रमाङ्क ८३-८४ एवं ९०-९१ का जो क्रम था, उसको प्रस्तुत संस्करण में 'मि०' प्रति के आधार पर ऊपर-नीचे रखा है।

उपर्युक्त मूलपाठ सम्पादन सम्बन्धी विशेषताओं को मूल ग्रन्थ में तत्-तत् स्थानों पर देखना चाहिये।

उक्त विवरण से प्रतीत होता है कि वचनिकाकार को डॉ० उपाध्ये द्वारा सम्पादन में प्रयुक्त योगसार की हस्तलिखित प्रतियों से भिन्न हस्तलिखित प्रति प्राप्त थी।

६. 'आ०' प्रति के संशोधन में डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने चार हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया है और उनसे पाठान्तर ग्रहणकर टिप्पण में उनका समावेश किया है। अतः इस संस्करण में हमने शुद्धपाठ को मूल में स्थान दिया है तथा अशुद्ध पाठ (पाठान्तर) को अथवा जिन पाठों की संगति देशभाषा वचनिका से नहीं बैठती है, उन्हें नीचे टिप्पण में दिया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वचनिका—१. वचनिका में कुछ स्थलों पर जो पाठ छूटे प्रतीत हुए हैं, उनकी प्रसङ्गानुसार पूर्ति करने का यथामति प्रयास किया है। पूर्ति पाठ इस प्रकार हैं—

दोहा क्रमांक	पाठ पूर्ति
१७	च्यारि
२३	ध्यान
६८	जे
६९	अकेला ही
७०	है
९१	सो ही शीघ्र केवलज्ञानकूं प्राप्त करै है
९६	पर
१०४	नय
१०५	अर सो ही आत्मा रुद्र है

२. वचनिका में पाठों का संशोधन इस प्रकार किया गया है—

दोहा क्रमाङ्क	संशोधित पाठ	मि० प्रति का पाठ	दोहा क्रमाङ्क	संशोधित पाठ	मि० प्रति का पाठ
उत्थानिका	सिद्धेभ्यः	सिद्धेभ्याः	१०	ज्ञाना-	ज्ञाना-
	लिखिए	लिखिऐ		वरणादिक	वर्णादिक
	मंगलकै	मंगलके		ए	ऐ
१	ज्ञानावरण	ज्ञानावर्ण	११	जांणि	जाणि
	ए	ऐ	१३	इच्छा	इछा
	भए	भऐ		गतिकूं	गतिकू
२	ए	ऐ	१६	उत्कृष्ट	उतुकृष्ट
३	एकाग्रचित्त	ऐकाग्रचित्त		ए	ऐ
	एक	ऐक	१७	पुरुषवेद	पुरषवेद
६	एक	ऐक		सूक्ष्मसांपराय	सुक्ष्म-सांपराय
	दूजा	दुजा			
७	स्वरूप	स्वंरूप		दर्शन	दरशन
९	कहिए	कहिऐ		कापोत	कपोत
	पूज्य	पुज्य		सम्यक्त्व	सम्यत्क
	संत	असंत		औपशमिक	उपशमिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा क्रमाङ्क	संशोधित पाठ	मि० प्रति का पाठ
	सम्यक्त्वनिके	सम्यत्कनिके
	गुणस्थाननिमैं	गुण-स्थानमैं
	त्यागनैं	त्यागतैं
१८	सम्यक्त्व-दर्शन	सम्यत्क-दर्शन
१९	सुमरिहु	सुमरिहू
	करिहु	करिहू
	ध्यावहु	ध्यावहू
	एक	ऐक
२०	एह	ऐह
२१	एही	ऐही
	छोड़हु	छोड़हू
२२	लोक	लोक्य
	स्वामी	स्वांमी
२३	पुरुष	पुरष
२४	कहिए	कहिऐ
२५	सम्यक्त्व	सम्यत्क
२६	कहिए	कहिऐ
२९	कहिए	कहिऐ
	सूक्ष्म-सांपराय	सुक्ष्म-सांपराय
	समिति	सुमति
	एक	ऐक
	एह	ऐह
३१	ए	ऐ
	एक	ऐक
	कहिए	कहिऐ
३३	एक	ऐक
	ए	ऐ

दोहा क्रमाङ्क	संशोधित पाठ	मि० प्रति का पाठ
३४	पुरुष	पुरूष
३५	आस्रव	आश्रव
	एह	ऐह
३६	ए	ऐ
	सर्व	सर्व्व
	एक	ऐक
	भावार्थ	भार्वर्थ
	सारभूत	सातभूत
३८	भेदक	भेदग
३९	क्यौंकि	क्यौंकी
	करहु	करहू
४१	जितनैंकूं	जितनैंकु
४२	कहिए	कहिऐ
	जानिहु	जानिहू
४७	कीए	कीऐ
	ए	ऐ
५१	नरक	नर्क
	परमात्मा	पर्मात्मा
५३	ए	ऐ
५४	कीजिए	कीजिऐ
५५	स्कंध	स्कंद्ध
५७	स्फटिक	ईसफाटिक
	ए	ऐ
५८	सूनां	सुनां
६४	पुरुष	पुरूष
	हैं	है
	कहिए	कहिऐ
६८	ए	ऐ
६९	स्वभाव	स्वाभाव
७०	तिनिनैं	तिनितैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा क्रमाङ्क	संशोधित पाठ	मि० प्रति का पाठ	दोहा क्रमाङ्क	संशोधित पाठ	मि० प्रति का पाठ
७२	इच्छा	इछा	१०२	सिद्धिकौं	सुधिकौं
७३	हे	है	१०४	ए	ऐ
	मार्ग	मार्ग्ग		हैं	है
७६	ए	ऐ			
७७	पुरुष	पुरूष		निश्चयनय	निश्चय
७८	सम्यग्दर्शन	सम्यकदर्शन	१०७	भए	भऐ
	सम्यग्ज्ञान	सम्यकज्ञान		ए	ऐ
	पुरुष	पुरूष		जाणहु	जाणिहू
८०	कहिए	कहिऐ	१०८	कहिए	कहिऐ
	एह	ऐह		ए	ऐ
८४	सम्यग्ज्ञान	सम्यकज्ञान		सूत्र	सुत्र
८७	द्रव्यार्थिक	द्रव्यार्थि			
	देखिए	देखिऐ		अन्तिम प्रशस्ति	
८८	दुर्गतिनि	दुरगतिनि	पद्य ३	बुध	वुस
९०	कहिए	कहिऐ		धाए	धाऐ
	कीए	कीऐ	४	आए	आऐ
९१	सम्यक्त्व	सम्यत्क	६	आए	आऐ
९३	पुरुष	पुरूष	७	आए	आऐ
९४	पुरुषाकार	पुरूषाकार	८	ल्याए	ल्याऐ
९५	पुरुष	पुरूष	१०	करुणा	करणा
९६	परभाव	भाव	१२	द्रुतविलंवित	द्रुतविलंविती
१०१	छेदोप-स्थापना	छेदोपस्थापन	१५	लिखाए	लिखाऐ
	मोक्षकूं	मोक्षकू		सुधाए	सुधाऐ
				एकादशी	ऐकादशी

अनुवाद—१. यद्यपि इस संस्करण के प्रकाशन का मूल उद्देश्य देशभाषा वचनिका को प्रकाश में लाने का है तथापि हिन्दी प्रेमी पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए अन्त में मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद दिया गया है।

२. दोहा क्रमाङ्क ८३ में मूल लेखक ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्-चारित्र के स्वरूप पर प्रकाश डाला है, किन्तु वचनिकाकार ने ज्ञान एवं ज्ञान के विशेषणों को आत्मा के विशेषण बतलाकर इस दोहा की वचनिका में मात्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शन एवं सम्यक्चारित्र के स्वरूप का विवेचन किया है। हमने इस दोहे का हिन्दी अनुवाद करते समय मूल लेखक की भावना का अनुसरण किया है।

३. दोहा अनुक्रमाङ्क ७२ में वचनिका का अनुसरण करते हुए 'परिच्चर्हिं' का हिन्दी अनुवाद संचय किया है।

परिशिष्ट—ग्रन्थ के अन्त में पद्यानुक्रमणिका दी है तथा मूल एवं वचनिकागत पारिभाषिक शब्दों को अकारादि क्रम से शब्दानुक्रमणिका के अन्तर्गत रखा है।

आध्यात्मिक विकास-क्रम :

कर्मों से लिप्त संसारी जीव किसी सुयोग को प्राप्त करके कर्मों का नाश कर अन्त में मुक्ति को प्राप्त होता है, यह भारतीय चिन्तन-परम्परा है। इसे जैनदर्शन में गुणस्थानों के रूप में विकसित किया गया है। गुणस्थानों की संख्या चौदह कही गयी है। सुविधा की दृष्टि से हम इन्हें आत्म-विकास के चौदह सोपान भी कह सकते हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द ने आत्मा के तीन भेद कहे हैं—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। आत्मा के इन्हीं तीन भेदों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थ योगसार में योगीन्दुदेव ने किया है। पूर्वोक्त चौदह गुणस्थानों में से जीव की चौथे गुणस्थान से पूर्व की स्थिति बहिरात्मा है। चौथे से बारहवें गुणस्थान तक की स्थिति अन्तरात्मा है। उसके बाद तेरहवें गुणस्थान की स्थिति सदेह परमात्मा है। इस प्रकार जीव बहिरात्मा से अन्तरात्मा की ओर उन्मुख होता हुआ चौदहवें गुणस्थान में सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके परमात्म पद को प्राप्त होता है। जीव के आध्यात्मिक-विकास की यही चरम अवस्था है। इसी परम्परा को परवर्ती आचार्यों ने 'योग' के नाम से विकसित किया है।

जैनदर्शन प्रारम्भ से ही अध्यात्मवादी रहा है। आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों से अध्यात्म की जो सरिता प्रवाहित हुई है, उसका प्रभाव परवर्ती साहित्य पर स्पष्ट दृष्टिगोचर तो होता ही है, साथ ही स्वतंत्र रूप से उस पर चिन्तन और मनन की प्रक्रिया का भी विकास हुआ है, जो अध्यात्म के अविरल प्रवाह को प्रमाणित करता है। इस परम्परा में आचार्य कुन्दकुन्द (ईसा की प्रथम शताब्दी) के पश्चात् आचार्य पूज्यपाद (ईसा की पाँचवीं शती) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये दोनों आचार्य योगीन्दुदेव से पूर्ववर्ती हैं। क्योंकि उक्त आचार्यद्वय का प्रभाव योगीन्दुदेव के ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। योगीन्दुदेव के पश्चात् इस परम्परा को विकसित करने वालों में आचार्य हरिभद्रसूरि (ईसा की आठवीं-नवमीं शती), आचार्य गुणभद्र (नवमीं ई०);

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य अमितगति (दशवीं ई०), मुनि रामसिंह (दशवीं शती), आचार्य शुभचन्द्र (वि० की बारहवीं शती), आचार्य हेमचन्द्र (ई० की बारहवीं शती) और आचार्य यशोविजय (ई० की अठारहवीं शती) के नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

ग्रन्थ का नामकरण :

'योगसार' नाम में दो शब्द हैं—योग + सार। विभिन्न ग्रन्थों में योग शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। सामान्यतः विद्वानों ने योग शब्द को निम्न अर्थों में स्वीकार किया है—एक प्रकार की ज्योति, संयोग, आगामी लाभ और समाधि।[1] यहाँ योग शब्द समाधि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसीलिये आचार्य कुन्दकुन्द ने राग-द्वेष आदि समस्त विकल्पों एवं विपरीत अभिनिवेशों का परित्याग करके आत्मा में आत्मा के रमण को योग कहा है।[2] दूसरे सार शब्द का अर्थ है—जिसमें तत्सम्बन्धित विषय मात्र को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया हो तथा अन्य बाह्य (विपरीत) प्रकरणों का सर्वथा अभाव हो।[3] अर्थात् जिस ग्रन्थ में राग-द्वेष विहीन केवल विशुद्ध आत्मतत्त्व पर विचार किया गया हो, वह है योगसार। सूक्ष्मदृष्टि से विचार करने पर योगसार की उक्त परिभाषा प्रस्तुत ग्रन्थ में अक्षरशः घटित होती है।

विषय की पुनरुक्ति :

योगसार में मुमुक्षु के लिये अत्यन्त उपयोगी चिन्तन-सूत्रों को प्रस्तुत कर जीव की यथार्थ स्थिति का दिग्दर्शन कराया गया है। अध्यात्म प्रधान ग्रन्थ होने से ग्रन्थकार ने एक ही विषय का विभिन्न स्थलों पर पुनः पुनः विवेचन किया है, जो पुनरुक्ति दोष न होकर इसका गुण है। क्योंकि मोक्षमार्ग में स्थित जीव के लक्ष्य की सिद्धि के लिये एक ही विषय का पुनः पुनः कथन कर उसमें उसे दृढ़ करना नितान्त अपेक्षित होता है, जिसका निर्वाह ग्रन्थ में किया गया है। मुमुक्षु को पथभ्रष्ट होने से बचाने का यह एक उत्तम प्रयास है। पुनः पुनः कथन की बात को ग्रन्थकार ने स्वयं स्वीकार किया है।[4]

---

१. योगो ज्योतिविशेषश्च, संयोगो योग उच्यते।
योगश्चागमिको लाभः, समाधिर्योग इष्यते॥
—अनेकार्थ ध्वनिमंजरी, पद्य ५३

२. नियमसार, गाथा १३७-१३९।

३. वही, गाथा ३।

४. इत्थु ण लेवउ पंडियहिं गुण-दोसु वि पुणरुत्तु।
भट्ट-पभायर-कारणइँ मइँ पुणु पुणु वि पउत्तु॥ —परमात्मप्रकाश, २/२११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिपाद्य विषय

ग्रन्थ में आये हुये विषयों पर हमने विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत निम्न प्रकार से विचार किया है—

मङ्गलाचरण एवं प्रतिज्ञा :

ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये ग्रन्थकारों द्वारा ग्रन्थ के आरम्भ, मध्य और अन्त में मङ्गलाचरण करने की प्राचीन परम्परा है। कुछ विद्वान् मात्र ग्रन्थ के आरम्भ में ही मङ्गलाचरण करते हैं। मङ्गल सामान्यतः तीन प्रकार का कहा गया है—मानसिक, वाचिक और कायिक। वाचिक मङ्गल निबद्ध भी होता है और अनिबद्ध भी। योगसार के प्रारम्भ में ग्रन्थकार योगीन्दुदेव ने निबद्ध वाचिक मङ्गलाचरण करते हुए सर्वप्रथम निर्मल ध्यान के माध्यम से कर्मरूपी कलङ्क को नष्टकर आत्म-स्वरूप को प्राप्त हुये सिद्ध भगवान् को नमस्कार किया है। पुनः चार घातिया कर्मों का नाशकर अनन्त-चतुष्टय को प्राप्त करने वाले अर्हन्त भगवान् के चरणों में नमस्कार किया है और अभीष्ट काव्य योगसार के रचने की प्रतिज्ञा की है।

धर्म का स्वरूप :

सामान्यतः लोग बाह्य-क्रियाकाण्डों में धर्म मानने लगे हैं, किन्तु वास्तविक धर्म उससे भिन्न है। धर्म, न पढ़ने से होता है और न शास्त्र रखने अथवा पिच्छी धारण करने से। मठ में प्रवेश करने से भी धर्म नहीं होता है और न केश-लुञ्चन आदि से। अपितु राग और द्वेष—इन दो का त्यागकर निजात्मा में निवास करना धर्म है। यह पञ्चम गति (मोक्ष) का प्रदाता है।

रत्नत्रय :

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र के समूह को रत्नत्रय कहते हैं। जिससे देखा जाता है वह दर्शन है और निर्मल महान् आत्मा ज्ञान है तथा बार-बार आत्मा की भावना करना पवित्र चारित्र है।[1] इस रत्नत्रय से संयुक्त जीव ही उत्तम तीर्थ है और वही मुक्ति का कारण है।

आत्मतत्त्व :

भारतीय दार्शनिकों ने आत्मतत्त्व पर गहन चिन्तन किया है, क्योंकि यह विचारणीय तत्त्वों का केन्द्र-बिन्दु रहा है। जैन मनीषियों द्वारा स्वीकृत सप्त

---

१. तुलना कीजिए—

जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दंसणं णेयं।
तं चारित्तं भणियं परिहारो पुण्णपावाणं॥

—मोक्षपाहुड, गाथा ३७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्त्वों में एकमात्र आत्म- (जीव-) तत्त्व ही ऐसा है जो चेतन है, शेष तत्त्व जड़ हैं। अतः यह सर्वोपरि है। इसी निर्मल आत्मतत्त्व के ध्यान से मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। आत्मा तीन प्रकार का है—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। इनमें बहिरात्मा का त्यागकर अन्तरात्मारूप होकर परमात्मा का ध्यान करना चाहिये। जो मिथ्यात्व एवं मोह के वशीभूत होकर पर-पदार्थों को आत्मा से भिन्न नहीं मानता है वह बहिरात्मा है, यह चतुर्गतिरूप संसार में भ्रमण कराता है और जो आत्मा पर-पदार्थों को आत्मा से भिन्न जानता हुआ उनका त्याग करता है वह पण्डित-आत्मा अर्थात् अन्तरात्मा है। जो निर्मल, निष्कलुष, जिन (कर्मरूपी शत्रुओंको जीतने वाला); विष्णु (ज्ञानमय होने के कारण जगत् में व्याप्त), बुद्ध (केवलज्ञान का धारक); शिव (कल्याणकारी) और शान्त (अथवा संत अर्थात् सदाकाल विद्यमान रहने वाला) है, वह परमात्मा है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि देहादिक पर-पदार्थों को आत्मा जानने वाला बहिरात्मा है, वह संसार-सागरमें भ्रमण कराने वाला है। क्योंकि जो देहादिक पर-पदार्थ कहे गये हैं वे आत्म-स्वरूप नहीं हैं। जो आत्माको नहीं जानता है, वह शास्त्र पढ़ते हुये भी जड़ (मूर्ख) है और जो आत्माको आत्मा जानता है, वह निर्वाणको प्राप्त होता है, अतः आत्मदर्शन सर्वश्रेष्ठ है, इसके बिना अन्य कुछ भी नहीं है।

जो तीनों लोकों में ध्यान करने योग्य हैं, ऐसे जिनेन्द्र भगवान् निश्चय से आत्मा हैं। इसी को हम और उदार दृष्टि से देखें तो निश्चयनय से आत्मा ही अरिहन्त है, उसी का प्रकट होना सिद्ध है; उसीको आचार्य जानो, वही उपाध्याय है और उसी को मुनि समझो। वही आत्मा शिव है, शङ्कर है, विष्णु है, वही रुद्र है, वही बुद्ध है, वही जिनेन्द्र भगवान् है, वही ईश्वर है, वही ब्रह्म है और वही आत्मा सिद्ध भी है। अतः एकमात्र यही आत्मा सारभूत है। इस आत्मदेव के जाने बिना जीव कुतीर्थों में भ्रमण करता है। वस्तुतः तीर्थों और देवालयों (मंदिरों) में देव (परमात्मा) नहीं है। जिनदेव (आत्मदेव) तो देह रूप देवालयमें विद्यमान है। इस बात को कोई समचित्त ज्ञानी आत्मा ही जानता है।

यह आत्मा निश्चय से शुद्ध प्रदेशों से पूरित लोकाकाश प्रमाण है और व्यवहार से तत्-तत् शरीर प्रमाण है। पुरुषाकार (शरीराकार) प्रमाण यह आत्मा पवित्र है, निर्मल गुणों से युक्त है। जो अपवित्र शरीर से भिन्न शुद्ध आत्मा को जानता है वह अविनाशी सुख में लीन होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुप्रेक्षा :

तत्त्वों को गहराई से जानने के लिये उनका पुनः पुनः चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। ये संख्या में बारह होने से द्वादशानुप्रेक्षाके नामसे जानी जाती हैं। इनका लोक प्रचलित दूसरा नाम बारह भावना भी है। ये वैराग्यवर्द्धक भावनाएँ मुक्तिपथ का पाथेय हैं। जिस प्रकार माँ पुत्र को उत्पन्न करती है, उसी प्रकार बारह भावनाएँ वैराग्य को उत्पन्न करने वाली हैं। जिस प्रकार हवा के लगने से अग्नि प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार इन बारह भावनाओं के चिन्तन से समता रूपी सुख जागृत हो जाता है।[१] 'ठाणं' में धर्मध्यानकी चार अनुप्रेक्षाओं का उल्लेख है—एकत्व; अनित्य, अशरण और संसार।[२] यतः योगसार में धर्मध्यान का विशेष रूप से विवेचन है, अतः उसमें उपर्युक्त चार अनुप्रेक्षाओं को ही स्थान दिया गया है और बतलाया है कि ये परिजन मेरे नहीं हैं (अनित्य भावना); इन्द्र, फणीन्द्र और नरेन्द्र भी जीवके शरण नहीं होते हैं (अशरण भावना); जीव अकेला पैदा होता है और अकेला ही मरता है तथा किसी भी सुख-दुःखको अकेला ही भोगता है। नरक भी जीव अकेला ही जाता है तथा निर्वाण को भी अकेला हो प्राप्त होता है (एकत्व भावना)।[३] जीव अनन्तकाल से सुख-प्राप्ति के लिये प्रयास करता चला आ रहा है, किन्तु कभी सुख को प्राप्त नहीं कर सका है, अपितु दुःख ही पाया है (संसार भावना)।[४] इस प्रकार पुनः-पुनः चिन्तन करने से जीव शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त होता है।

सम्यग्दर्शन :

समस्त लोकव्यवहार का त्यागकर जो आत्मस्वरूप में रमण करता है वह सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर शीघ्र ही संसार-सागर से पार हो जाता है। यद्यपि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है, क्योंकि यह जीव अनन्तकाल से चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता रहा है, किन्तु सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं कर सका। तथापि यदि किसी पुण्योदय के कारण सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेता है तो उसका दुर्गति में गमन नहीं होता है। पूर्वकृत कर्मवशात् दुर्गति में गमन हो भी जाय तो कोई दोष नहीं है, अपितु इससे पूर्वकृत कर्मोंका क्षय ही होता है। जिसके सम्यक्त्व प्रधान है; वही ज्ञानी है और वही तीनों लोकों में प्रधान है। वह शीघ्र ही शाश्वत सुखके निधान केवलज्ञान को प्राप्त करता है।

---

१. बारह भावना : एक अनुशीलन, डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल, पृष्ठ १९।
२. ठाणं ४/६८।
३. योगसार, पद्य ६७-६९।
४. वही, पद्य ४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोक्ष के हेतु एवं मोक्षसुख :

जीव का चरम लक्ष्य शाश्वत सुख के आधारभूत मोक्ष को प्राप्त करना है। इसकी प्राप्ति में हेतुभूत जो कारण बतलाये गये हैं उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—इच्छारहित तप करना, आत्मा को आत्मा जानना, भगवान् जिनेन्द्रदेव का स्मरण करना, चिन्तन करना और शुद्ध मन से उन्हीं का ध्यान करना आदि। इनमें प्रमुख रूप से आत्मज्ञान नितान्त अपेक्षित है। जो जीव और अजीवके भेद को जानता है वही मोक्ष के कारणको जानता है। जो लोग समस्त विकल्पों का त्याग कर परम-समाधि को प्राप्त करते हैं, वे आनन्द का अनुभव करते हैं। उसी को मोक्ष-सुख कहते हैं।

संसार दशा :

जीव अनादिकाल से सुख-प्राप्ति के लिये प्रयास करता चला आ रहा है; किन्तु कभी भी सुख को प्राप्त नहीं कर सका है। इसका मूल कारण जीव का मिथ्यादर्शन एवं मोह के वशीभूत होना है। जीव की स्थिति विचित्र है। उसकी आयु क्षीण हो जाती है, किन्तु उसके मन की ग्रन्थियाँ क्षीण नहीं होती हैं और न ही आशा-तृष्णा। जीव की ममत्व बुद्धि जिस प्रकार विषय-कषायों के प्रति दृढ़ है, उस प्रकार आत्महित के प्रति नहीं। इसीलिए जीव संसार में भ्रमण करता हुआ दुःख भोगता है।

बन्ध और मोक्ष :

विभाव रूप परिणाम से जीव कर्म-बन्ध को प्राप्त होता है तथा स्वभाव रूप परिणाम से मोक्ष को। जब अजर-अमर एवं गुणों के समूह का स्थान आत्मा स्थिर हो जाता है, तब जीव नवीन कर्मों का बन्ध नहीं करता है तथा उसके पूर्व सञ्चित कर्मों का क्षय हो जाता है। सम्पूर्ण कर्मों का क्षय हो जाना ही मोक्ष है।

पुण्य और पाप :

जो आत्मा को पवित्र करता है या जिससे आत्मा पवित्र होता है, वह पुण्य है। जो आत्मा को शुभ से बचाता है, वह पाप है।[१] पुण्य से जीव स्वर्ग प्राप्त करता है और पाप से नरक में जाता है। जो पुण्य और पाप—इन दोनों को छोड़कर आत्मा को जानता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है। जो आत्मा को तो जानता नहीं है और समस्त पुण्य-कार्यों को करता है तो वह मोक्ष सुख को प्राप्त

---

१. पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति पुण्यम्, पाति रक्षति आत्मानं शुभादिति पापम्।
—सर्वार्थसिद्धि; ६/३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं कर सकता है। इसीलिए विवेकशील ज्ञानी पुरुष निश्चयनय की अपेक्षा पुण्य को भी पाप की कोटि में परिगणित करते हुये पाप को लोहे की जंजीर की संज्ञा देते हैं और पुण्य को सोने की जंजीर की। वस्तुतः जिस प्रकार उक्त दोनों जंजीरें प्राणी को बाँधने का कार्य करती हैं, उसी प्रकार पुण्य और पाप जीव को संसार भ्रमण रूप कार्य कराते रहते हैं तथा मुक्त नहीं होने देते हैं। अतः निश्चय से पुण्य (शुभभाव) और पाप (अशुभभाव) हेय हैं तथा पुण्य-पाप छोड़कर शुद्ध आत्मा का ध्यान (शुद्धभाव) उपादेय है।

ध्यान :

मोक्षाभिलाषी के लिये ध्यान का विशेष महत्त्व है। यह ध्यान चार प्रकार का है—आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान।[१] धर्म्यध्यान के चार भेद हैं—पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत। पिण्ड अर्थात् शरीर में स्थित निजात्मा का चिन्तन करना पिण्डस्थ ध्यान है। मन्त्र-वाक्यों का ध्यान करना पदस्थ ध्यान है। सर्व चिद्रूप (परमात्मा) का चिन्तन करना रूपस्थ ध्यान है और निरञ्जन (सिद्ध भगवान्) का ध्यान करना रूपातीत ध्यान है।[२]

सिद्ध और भिक्षाटन :

जिन लोगों की यह मान्यता है कि सिद्ध हो जाने पर भिक्षा के निमित्त भगवान् भ्रमण करते हैं, वे भगवान् के मुंह पर हँसी उड़ाते हैं अर्थात् उनका अपमान करते हैं।

मिथ्यादृष्टि के व्रत-तप :

जीव जब तक शुद्ध स्वभावरूप पवित्र आत्मा को नहीं जानता है तब तक उस मिथ्यादृष्टि जीव के व्रत, तप, संयम और मूलगुणों को मोक्ष का कारण नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि सम्यक्त्व के अभाव में ये समस्त क्रियायें व्यर्थ हैं। साथ ही एक अन्य बात यह भी है कि व्रत, तप, संयम और शील—ये सब व्यवहारनय से कहे गये हैं, मोक्ष का कारण तो एक निश्चयनय है।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र, ९/२८।

२. (क) पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं पिण्डस्थं स्वात्मचिन्तनम्।
रूपस्थं सर्वचिद्रूपं रूपातीतं निरञ्जनम्॥

—परमात्मप्रकाश, ब्रह्मदेवकृत संस्कृतवृत्ति, दोहा १

—बृहद्द्रव्यसंग्रह, ब्रह्मदेवकृत संस्कृतवृत्ति, गाथा ४८।

(ख) उक्त चारों ध्यानों की विस्तृत जानकारी के लिये देखिये—

—वसुनन्दिश्रावकाचार; ४५८-४७६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निश्चय और व्यवहार :

जैन सिद्धान्त को समझने के लिये नयदृष्टि अपनाना आवश्यक है, क्योंकि उसके बिना वस्तु के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है। अतः यहाँ नय के प्रमुख दो भेद—निश्चयनय और व्यवहारनय के माध्यम से बतलाया गया है कि—मार्गणा और गुणस्थान व्यवहारनय से कहे गये हैं, निश्चय से तो आत्मा को जानो, क्योंकि उससे परमेष्ठी पद की प्राप्ति होती है। तीनों लोकों में ध्यान करने योग्य जिनेन्द्र भगवान् हैं और वही आत्मा हैं, ऐसा निश्चयनय से कहा गया है। व्रत, तप, संयम और शील—ये सब व्यवहारनय से कहे गये हैं। मोक्ष का कारण तो एक निश्चयनय है और वही तीनों लोकों में सारभूत है। छह द्रव्य, नव पदार्थ और सप्त तत्त्व व्यवहार से कहे गये हैं। समस्त व्यवहार को त्यागकर जो निर्मल आत्मा को जानता है, वह शीघ्र ही भवसागर से पार हो जाता है। जो सिद्ध हो गये हैं, जो सिद्ध हो रहे हैं, वे निश्चय से आत्मदर्शन से हुए हैं।

चारित्र :

सम्यक्चारित्र के बिना मुक्ति सम्भव नहीं है, क्योंकि चारित्र को मोक्ष का साक्षात् कारण कहा गया है। यह चारित्र पाँच प्रकार का होता है—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात।[१] यहाँ योगीन्दुदेव ने प्रथम चार प्रकार के चारित्र का उल्लेख किया है। उनके अनुसार राग और द्वेष—इन दो को त्यागकर 'समस्त जीव ज्ञानमय हैं' इस प्रकार जो समभाव का अनुभव होता है, वह सामायिकचारित्र है। हिंसादिक का परित्याग कर उपयोग को आत्मा में लगाना द्वितीय छेदोपस्थापनाचारित्र है। मिथ्यात्वादिक के परिहार से जो सम्यग्दर्शन की शुद्धि होती है, वह परिहारविशुद्धिचारित्र है। सूक्ष्म लोभ का नाश होने से परिणामों का सूक्ष्म होना सूक्ष्मसाम्परायचारित्र है। जिसमें किसी भी कषाय का उदय न होकर या तो वह उपशान्त रहता है या क्षीण, वह यथाख्यातचारित्र है।[२]

इस प्रकार उपर्युक्त पाँच प्रकार का चारित्र आत्मा की स्थिरता में प्रमुख कारण है।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र, ९/१८।
२. वही; ९/१८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थकार : योगीन्दुदेव

योगीन्दु नाम के सन्दर्भ में परमात्मप्रकाश और योगसार में निम्नलिखित पद्य उपलब्ध हैं—

भावि पणविवि पंच-गुरु सिरि-जोइंदु जिणाउ।
भट्टपहायरि विण्णविउ विमलु करेविणु भाउ॥

—परमात्मप्रकाश, १/८

संसारहँ भयभीयएण जोगिचंद मुणिएण।
अप्पा संबोहण कया दोहा एक्कमणेण॥

—योगसार, १०८

परमात्मप्रकाश के उपर्युक्त पद्य में स्पष्ट रूप से जोइंदु (योगीन्दु) शब्द का उल्लेख है, अतः इसमें कुछ विशेष कहने का अवसर नहीं है। किन्तु योगसार के पद्य में जोगिचंद (योगिचन्द्र) शब्द का उल्लेख है, एतदर्थ जोगिचंद से जोइन्दु की कल्पना करने के लिये कुछ आधार/औचित्य अपेक्षित हैं।

जोइंदु और जोगिचंद—ये दोनों शब्द समानार्थक हैं। संस्कृत साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं, जहाँ पर्यायवाची शब्द के माध्यम से कवि आदि के नाम का उल्लेख किया गया है।[१] अतः जोइंदु को जोगिचंद अथवा जोगिचंद को जोइंदु के रूप में प्रयोग करना कवि परम्परा के विरुद्ध नहीं हैं।

इस प्रसंग में डॉ० ए० एन० उपाध्ये का यह कथन मननीय है कि—ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं जहाँ व्यक्तिगत नामों में इंदु और चंद्र आपस में बदल दिये गये हैं, जैसे—भागेंदु और भागचंद्र तथा शुभेंदु और शुभचंद्र।[२]

परमात्मप्रकाश और योगसार के कर्त्ता के रूप में विद्वानों के द्वारा बहुमान्य जोइंदु का संस्कृत रूप योगीन्दु ही प्रचलित है। यतः कवि अध्यात्म परम्परा

---

१. विनयेन्दुमुनेर्वाक्याद् भव्यानुग्रहहेतुना। इष्टोपदेशटीकेयं कृताशाधरधीमता॥
उपशम इव मूर्तः सागरेन्दोमुनीन्द्रादजनि विनयचन्द्रः सच्चकोरैकचन्द्रः।
जगदमृतसगर्भा शास्त्रसंदर्भगर्भाः शुचिचरितवरिष्णोर्यस्य धिन्वन्ति वाचः॥
—इष्टोपदेश, पण्डितप्रवर आशाधरकृत संस्कृत टीका, अन्तिम प्रशस्ति, पद्य १-२

इन पद्यों में विनयचन्द्र को विनयेन्दु और सागरचन्द्र को सागरेन्दु के नाम से उल्लिखित किया गया है।

२. परमात्मप्रकाश, प्रस्तावना (हिन्दी अनुवाद : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री) पृष्ठ १२२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के पोषक हैं, अतः उन्हें तदनुरूप सम्मान देने की दृष्टि से योगीन्दुदेव नाम समीचीन प्रतीत होता है।

यद्यपि योगीन्दुदेव के माता-पिता अथवा गुरु के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता है तथापि परमात्मप्रकाश के पूर्वोक्त पद्य से ज्ञात होता है कि योगीन्दुदेव ने प्रभाकर भट्ट नाम के शिष्य के निवेदन पर परमात्मप्रकाश की रचना की थी। ये प्रभाकर भट्ट प्रसिद्ध पूर्वमीमांसक प्रभाकर भट्ट (लगभग ६०० ई०) से भिन्न हैं।[१]

योगीन्दुदेव एक आध्यात्मिक सन्त पुरुष थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों से इनकी आध्यात्मिक प्रकृति/प्रवृत्ति का सहज ज्ञान होता है। इन्होंने अपनी रचनाओं में शिव, शंकर, विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा आदि वैदिक शब्दों का प्रयोग किया है।[२] अतः क्षु० जिनेन्द्र वर्णी का यह कथन ध्यातव्य है कि—"पहले ये वैदिक मतानुसारी रहे होंगे, क्योंकि आपकी कथन शैली में वैदिक मान्यता के शब्द बहुलता से पाये जाते हैं।"[३] योगीन्दुदेव की प्रारम्भिक स्थिति चाहे जो भी रही हो, किन्तु उन्होंने जीव के सिद्ध हो जाने पर उसके भिक्षार्थ पर्यटन की समीक्षा की है।[४] अतः ये दिगम्बराचार्य थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

काल निर्धारण :

योगीन्दुदेव के द्वारा रचित परमात्मप्रकाश और योगसार में हमें ऐसे कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं, जिनसे योगीन्दुदेव के समय पर प्रकाश पड़ सके। अतः उनके समय निर्धारण हेतु हमारे सामने प्रमुख रूप से निम्न दो बिन्दु ही शेष रहते हैं—

१. योगीन्दुदेव की रचनाओं पर किन-किन आचार्यों के ग्रन्थों का प्रभाव है ?

२. योगीन्दुदेव का किन-किन परवर्ती आचार्यों ने उल्लेख किया है अथवा उनके ग्रन्थों से सामग्री ग्रहण की है ?

डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने प्रथम बिन्दु पर विचार करते हुये निष्कर्ष निकाला है कि योगीन्दुदेव के ग्रन्थों पर आचार्य कुन्दकुन्द एवं पूज्यपाद के ग्रन्थों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।[५] उपर्युक्त आचार्यद्वय के ग्रन्थों

---

१. परमात्मप्रकाश, प्रस्तावना (हिन्दी अनुवाद : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री), पृष्ठ २१०।

२. योगसार, दोहा १०५।

३. जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश; भाग ३, पृ० ४०१; देखिये—योगेंदुदेव।

४. योगसार, दोहा ४३।

५. परमात्मप्रकाश, प्रस्तावना (हिन्दी अनुवाद : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री); पृ० ११३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का सम्यक् अवलोकन करने पर डॉ० उपाध्ये द्वारा निर्दिष्ट उक्त तथ्य की पुष्टि हो जाती है। अतः इस प्रथम विन्दु पर पुनः विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

अब द्वितीय विन्दु पर विचार करना ही यहाँ अभीष्ट है। योगीन्दुदेव ने अपने ग्रन्थों की रचना तत्कालीन लोक प्रचलित अपभ्रंश भाषा में की है। अपभ्रंश भाषा, प्राकृत भाषाओं और नव्य भारतीय आर्यभाषाओं के बीच की कड़ी है। यद्यपि अपभ्रंश शब्द का प्रयोग प्राचीन है तथापि ईसा की छठीं शताब्दी तक यह भाषा साहित्यिक भाषा के पद पर आरूढ़ हो चुकी थी। डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने अपभ्रंश का युग ई० ६०० से १२०० तक माना है।[१] अतः इतना तो निश्चित है कि योगसार की रचना छठी शताब्दी के पहले नहीं हुई है।

परमात्मप्रकाश एवं योगसार के रचयिता योगीन्दुदेव के समय को लेकर विद्वानों में गम्भीर मतभेद है। भिन्न-भिन्न विद्वानों ने उनका आविर्भाव ईसा की छठीं शताब्दी से लेकर ईसा की बारहवीं शताब्दी तक स्वीकार किया है। डॉ० कामताप्रसाद जैन[२] योगीन्दुदेव को बारहवीं शती का विद्वान मानते हैं। डॉ० भोलाशंकर व्यास[३] ने उन्हें ग्यारहवीं शती से पुराना स्वीकार किया है। श्री मधुसूदन मोदी[४] ने योगीन्दु का समय १०वीं-११वीं शती माना है। श्री राहुल सांकृत्यायन[५] ने उनका समय १००० ई० माना है। डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री[६] तथा डॉ० नामवर सिंह[७] उन्हें दशवीं शती का विद्वान् मानते हैं। हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी[८] एवं अपभ्रंश साहित्य के मर्मज्ञ डॉ० हरिवंश कोछड़[९] ने भाषा के आधार पर योगीन्दु का समय आठवीं-नवीं शती स्वीकार किया है। इस प्रसंग में पं० प्रकाश हितैषी शास्त्री

१. प्राकृतभाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ११५।
२. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, पृ० २६।
३. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ३४६।
४. अपभ्रंश पाठावली, टिप्पणी; पृ० ७७, ७६।
(देखिए—हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग; पृ० ३४६; टिप्पण १)।
५. देखिए—अपभ्रंश साहित्य, पृ० २६८।
६. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन; भाग २, पृ० २०८।
७. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, पृ० २००।
८. हिन्दी साहित्य; पृ० २२।
९. अपभ्रंश साहित्य; पृ० २६८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ने लिखा है कि—"योगीन्दु मुनि के परमात्मप्रकाश और योगसार की जो भाषा है उसे हम छठीं शताब्दी की नहीं मान सकते हैं, क्योंकि उस भाषा में हिन्दी जैसा अत्यधिक सरलीकरण आ गया था।"[१] उन्होंने अपने इस कथन के समर्थन में योगसार से दो दोहे[२] उद्धृत करते हुये डॉ० कोछड़ के मत (ईसा की आठवीं शती) की पुष्टि की है।[३] पं० ला० म० गांधी ने योगीन्दु को प्राकृत व्याकरण के रचयिता चंड से भी पुराना सिद्ध किया है।[४]

उपर्युक्त के अतिरिक्त योगीन्दुदेव के समय पर विचार करने वाले विद्वानों में डॉ० ए० एन० उपाध्ये सर्वाग्रणी हैं। उन्होंने पूर्वापर सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुये जिस सूक्ष्मता एवं गहराई के साथ योगीन्दुदेव के समय पर तर्कपूर्ण शैली में विचार किया है, वह अत्यधिक वैज्ञानिक एवं महत्त्वपूर्ण है।

डॉ० उपाध्ये ने योगीन्दुदेव के समय की अन्तिम अवधि पर विचार करते हुये जिन आठ तथ्यों का उल्लेख किया है, उनका सारांश इस प्रकार है—

१. षट्प्राभृत की संस्कृत टीका के रचयिता श्रुतसागर, जो ईसा की सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुये हैं, ने परमात्मप्रकाश से छह पद्य उद्धृत किये हैं।

२. परमात्मप्रकाश पर मलधारी बालचन्द्र ने कनड़ी और ब्रह्मदेव ने संस्कृत में टीका लिखी है। उन दोनों का समय क्रमशः ईसा की चौदहवीं और तेरहवीं शताब्दी के लगभग है।

३. आचार्य कुन्दकुन्द की रचनाओं के टीकाकार जयसेन; जिनका समय ईसा की बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के लगभग है, ने समयसार की टीका में

---

१. चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर स्मृतिग्रन्थ, २/१८०।

२. देहादिउ जे परि कहिया ते अप्पणु ण होंहि।
इउ जाणे विण जीव तुहु अप्पा अप्प मुणेहि॥
चउराशि लक्खहिं फिरउं कालु अणाई अणंतु।
पर सम्मत्तु ण लद्ध जिय एहउ जाणि णिभंतु॥ —वही, २/१८०।

३. वही; २/१८०-१८१।

४. अपभ्रंश काव्यत्रयी; भूमिका; पृ० १०२-१०३।
(देखिए—हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास; प्रथम भाग; पृ० ३४६; टिप्पण १)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमात्मप्रकाश का उल्लेख करते हुये उसमें एक पद्य उद्धृत किया है।[1] इसी प्रकार पञ्चास्तिकाय की टीका में भी योगसार का ५७ वाँ पद्य उद्धृत किया है।[2]

४. आचार्य हेमचन्द्र ने अपने अपभ्रंश व्याकरण के सूत्रों के उदाहरण में किञ्चित् परिवर्तन के साथ परमात्मप्रकाश से कुछ दोहे उद्धृत किये हैं। हेमचन्द्र का समय १०८९ ई० से ११७३ ई० है। व्याकरण का आधार केवल बोलचाल की भाषा नहीं होती है। अतः हेमचन्द्र से कम से कम दो शताब्दी पूर्व जोइन्दु (योगीन्दु) का समय मानना होगा।

५. प्रो० हीरालाल जी के अनुसार हेमचन्द्र ने रामसिंह के दोहापाहुड से कुछ पद्य उद्धृत किये हैं और रामसिंह ने जोइन्दु (योगीन्दु) के योगसार और परमात्मप्रकाश से बहुत से दोहे लेकर अपनी रचना को समृद्ध किया है; अतः जोइन्दु (योगीन्दु) हेमचन्द्र के केवल पूर्ववर्ती ही नहीं हैं, अपितु उन दोनों के मध्य रामसिंह हुये हैं।

६. देवसेन के तत्त्वसार के कुछ पद्य परमात्मप्रकाश के दोहों से बहुत कुछ मिलते हैं। अतः देवसेन ने योगीन्दु का अनुसरण किया है। अपनी रचनाओं में देवसेन ने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों का प्रायः उपयोग किया है। उन्होंने वि० सं० ९९० (९३३ ई०) में दर्शनसार समाप्त किया था।

७. प्रो० उपाध्ये ने निम्न दो पद्यों को तुलना के लिये उद्धृत किया है—

विरला जाणहिँ तत्तु बुहु विरला निसुणहिँ तत्तु।
विरला झायहिँ तत्तु जिय विरला धारहिँ तत्तु॥

—योगसार, ६६

विरला णिसुणहि तच्चं विरला जाणंति तच्चदो तच्चं।
विरला भावहि तच्चं विरलाणं धारणा होदि॥

—कत्तिगेयाणुप्पेक्खा, २७९

---

१. तथा योगींद्रदेवैरप्युक्तं—

णवि उपज्जइ णवि मरइ बंधण मोक्खू करेइ।
जिउ पुरमत्थे जोइया, जिणवर एउ भणेइ॥ ६८॥

—समयसार, गाथा ३४१ पर जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति में उद्धृत, पृ० २८६

२. रयणदिवदिणयरु दम्हि उडु दाउपासणु।
सुणरुप्पफलिहउ अगणि णव दिट्ठंता जाणु॥ ५७॥

—पञ्चास्तिकाय, गाथा २७ पर जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति में उद्धृत, पृ० ६१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और अपने निष्कर्ष में लिखा है कि कुमार की कत्तिगेयाणुप्पेक्खा अपभ्रंश भाषा में नहीं लिखी गई है। अतः वर्तमानकाल तृतीय पुरुष के बहुवचन के रूप में 'णिसुणहिं' और 'भावहिं' उसमें जबरन घुस गये हैं; किन्तु योगसार में वे ही रूप ठीक हैं। दोनों पद्यों का आशय एक ही है, केवल दोहे को गाथा में परिवर्तित कर दिया है। अतः कुमार ने जोइन्दु के दोहे का अनुसरण किया है। क्योंकि जोइन्दु और कुमार में जोइन्दु प्राचीन हैं।

८. प्राकृत लक्षण के कर्त्ता चण्ड ने अपने सूत्र 'यथा तथा अनयोः स्थाने' के उदाहरण में निम्नलिखित दोहा उद्धृत किया है—

कालु लहेविणु जोइया जिम जिम मोहु गलेइ।
तिम तिम दंसणु लहइ जो णियमें अप्पु मुणेइ॥

यह परमात्मप्रकाश के प्रथम अधिकार का ८५ वाँ दोहा है। यतः चण्ड के व्याकरण के व्यवस्थित रूप का समय ईसा की सातवीं शताब्दी के लगभग है, अतः परमात्मप्रकाश को प्राकृतलक्षण से पुराना मानना चाहिये।

उपर्युल्लिखित बिन्दुओं पर विचार करने के पश्चात् डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यतः योगीन्दु, कुन्दकुन्द के मोक्खपाहुड और पूज्यपाद के समाधिशतक के बहुत ऋणी हैं और कुन्दकुन्द का समय ईस्वी सन् के प्रारम्भ के लगभग है तथा पूज्यपाद का पाँचवीं शताब्दी के अन्तिम पाद से कुछ पूर्व। अतः परमात्मप्रकाश—समाधिशतक और प्राकृतलक्षण के मध्यकाल की रचना है। इसलिये योगीन्दु ईसा की छठीं शताब्दी के विद्वान् हैं।

उपर्युक्त विद्वानों के विचारों का समग्र रूप से आकलन करने पर ज्ञात होता है कि डॉ० उपाध्ये के विचार काफी सुलझे हुये एवं स्पष्ट हैं। अतः इस प्रसङ्ग में हिन्दी साहित्य के विद्वान् डॉ० हरिवंश कोछड़ का यह कथन कोई महत्त्व नहीं रखता है कि—"चण्ड के प्राकृतलक्षण में परमात्मप्रकाश का एक दोहा उद्धृत किया हुआ मिलता है, जिसके आधार पर डॉ० उपाध्ये योगीन्द्र (योगीन्दु) का समय चण्ड से पूर्व ईसा की छठी शताब्दी मानते हैं, किन्तु सम्भव है कि वह दोहा दोनों ने किसी तीसरे स्रोत से लिया हो। इसलिये इस युक्ति से हम किसी निश्चित मत पर नहीं पहुँच सकते। भाषा के विचार से योगीन्दु का समय ८वीं-९वीं शताब्दी के लगभग प्रतीत होता है।"[१]

इसका प्रमुख कारण यह है कि डॉ० उपाध्ये ने अपने कथन की पुष्टि में चण्ड के प्राकृतलक्षण में उद्धृत एक दोहा को प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया है,

१. अपभ्रंश साहित्य, पृ० २६८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जबकि उपर्युक्त विद्वान् मात्र भाषा को आधार बनाकर अपनी बात कहते हैं। मेरा तो विचार यह है कि यतः अपभ्रंश, भाषा के रूप में ईसा की छठीं शताब्दी में प्रतिष्ठित हो गई थी, अतः ईसा की छठीं शताब्दी में अपभ्रंश भाषा में रचे गये ग्रन्थों में परमात्मप्रकाश और योगसार की रचना को स्वीकार करना युक्तियों से विपरीत नहीं है। एक अन्य बात यह भी कि उक्त कथन की पुष्टि में एक सबल प्रमाण हमारे समाने है, जो अकाट्य है। जब तक परमात्मप्रकाश के उक्त दोहा का उल्लेख किसी पूर्ववर्ती अन्य ग्रन्थ में नहीं मिल जाता है, जिसकी डॉ० कोछड़ ने सम्भावना प्रकट की है, तब तक उसे योगीन्दुदेव की रचना स्वीकार करना ही समीचीन होगा।

कृतियाँ :

योगीन्दुदेव के नाम से सामान्यतः निम्न रचनाओं का उल्लेख किया जाता है—१. परमात्मप्रकाश (अपभ्रंश), २. योगसार (अपभ्रंश), ३. नौकार श्रावकाचार अथवा सावयधम्मदोहा (अपभ्रंश), ४. अध्यात्मसंदोह (संस्कृत); ५. सुभाषिततंत्र (संस्कृत); ६. तत्त्वार्थटीका (संस्कृत); ७. दोहा पाहुड (अपभ्रंश), ८. अमृताशीति (संस्कृत) और ९. निजात्माष्टक (प्राकृत)। इनमें से क्रमाङ्क ४ और ५ के सम्बन्ध में डॉ० उपाध्ये ने अनभिज्ञता प्रकट की है तथा क्रमाङ्क ६ के रचयिता के नाम सादृश्य मात्र के कारण उन्होंने योगीन्दुदेव की रचना होने में सन्देह व्यक्त किया है। क्रमाङ्क ३, ७, ८ और ९ पर डॉ० उपाध्ये ने विस्तारपूर्वक ऊहापोह करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि ये रचनाएँ योगीन्दुदेव की नहीं हैं। शेष परमात्मप्रकाश एवं योगसार—ये दो रचनाएँ ही ऐसी हैं, जिन्हें विषय वस्तु तथा वर्णन शैली आदि में साम्य होने के कारण डॉ० उपाध्ये ने प्रस्तुत योगीन्दुदेव की रचनाएँ होना स्वीकार किया है।[1] पं० प्रकाश हितैषी शास्त्री ने भी डॉ० उपाध्ये के उपर्युक्त मत की पुष्टि की है।[2]

१. (क) परमात्मप्रकाश, प्रस्तावना (हिन्दी अनुवाद : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री), पृ० १२२-१२६।
(ख) क्षु० जिनेन्द्र वर्णी ने सुभाषिततंत्र के स्थान पर सुभाषितरत्नसंदोह एवं अध्यात्मसंदोह के स्थान पर स्वानुभवदर्पण नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है।
—द्रष्टव्य, जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश; भाग ३, पृ० ४०१; 'योगेंदुदेव' शब्द

२. परमात्मप्रकाश और उसके रचयिता, पृ० १८१।
(द्रष्टव्य; श्री १०८ चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर स्मृतिग्रन्थ; पृ० १७५ से १८१ तक संग्रहीत उपर्युक्त लेख)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमात्मप्रकाश—यह ग्रन्थ आध्यात्मिक दृष्टि से लिखा गया है, अतः इसमें अध्यात्मविद्या का विशेष विवेचन है। ग्रन्थ के अन्तःसाक्ष्यों से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ योगीन्दुदेव ने अपने शिष्य प्रभाकर भट्ट के द्वारा किये गये प्रश्नों के उत्तर में लिखा है। इसमें कुल (१२३ + ४ तथा २१४ + १२ =) ३५३ पद्य हैं। यह दो अधिकारों में विभक्त है—प्रथम त्रिविधात्माधिकार और द्वितीय मोक्षाधिकार। प्रथम अधिकार में आत्मा के बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा—इन तीन भेदों पर विस्तार से विचार किया है तथा द्वितीय अधिकार में मोक्ष के स्वरूप एवं उसके फलादि पर विचार करते हुए अन्त में परमसमाधि का विवेचन किया है।

योगसार—इसकी विषयवस्तु विस्तार से अन्यत्र दी गई है।

कथन शैली :

अध्यात्म प्रधान इस ग्रन्थ में योगीन्दुदेव ने एक ही विषय का अनेक प्रकार से विवेचन किया है। साथ ही प्रसङ्गानुसार कई स्थानों पर निश्चय और व्यवहार शब्दों का प्रयोग करते हुये यह स्पष्ट किया है कि यह कथन निश्चय से है और यह कथन व्यवहार से। इससे पाठक दिग्भ्रमित नहीं होता है।

उपमाएँ और उनका प्रयोग :

विषयवस्तु रुचिकर एवं सहजगम्य हो इसके लिये योगीन्दुदेव ने जैनदर्शन सम्मत उपमाओं/दृष्टान्तों का प्रयोग किया है। पुण्य की सोने की जंजीर और पाप की लोहे की जंजीर से उपमा दी है तथा कर्मविहीन आत्मा की जल से निर्लिप्त कमलिनी-पत्र से तुलना की है।

छन्द-योजना :

योगीन्दुदेव ने यद्यपि प्रमुख रूप से दोहा छन्द का ही प्रयोग किया है, किन्तु उनके योगसार में दोहा के अतिरिक्त सोरठा और चौपाई छन्द में रचे गये पद्य भी उपलब्ध हैं। अतः यहाँ उनके लक्षणों पर विचार करना अप्रासङ्गिक न होगा।

दोहा—प्राकृतपैंगलम् में दोहा छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया है—

तेरह मत्ता पढम पअ, पुणु एयारह देह।
पुणु तेरह एआरहइ, दोहा लक्खण एह ॥[1]

अर्थात् जिस छन्द के प्रथम चरण में तेरह मात्राएँ, द्वितीय चरण में ग्यारह मात्राएं एवं तीसरे तथा चौथे चरण में क्रमशः तेरह और ग्यारह मात्राएँ पाई जायें, वह दोहा छन्द है। यथा—

---

१. प्राकृतपैंगलम्, भाग १, पृ० ७० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्पा अप्पइ जो मुणइ, जो परभाउ चएइ।
सो पावइ सिवपुर-गमणु, जिणवरु एम भणेइ॥[1]

सोरठा—सोरठा छन्द का लक्षण इस प्रकार है—

सो सोरट्ठउ जाण, जं दोहा विपरीअ ठिअ।
पअ पअ जमक वखाण, णाअराअ पिंगल कहिअ॥[2]

अर्थात् सोरठा छन्द वह है जो दोहा के विपरीत स्थित हो (तात्पर्य यह कि जिसके प्रथम चरण में ग्यारह, द्वितीय चरण में तेरह एवं तृतीय तथा चौथे चरण में क्रमशः ग्यारह और तेरह मात्राएँ हों) तथा प्रत्येक चरण में यमक (तुक) हो। यथा—

धम्मु ण पढियइँ होइ, धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइँ।
धम्मु ण मढिय-पएसि, धम्मु ण मत्था लुंचियइँ॥[3]

चौपाई—जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं, वह चौपाई है। इसके बनने में केवल द्विकल और त्रिकल का ही प्रयोग होता है। इसमें किसी त्रिकल के बाद दो गुरु और सबसे अन्त में जगण या तगण नहीं होता है। इसे रूप चौपाई या पादाकुलक भी कहते हैं।[4] यथा—

को सुसमाहि करउ को अंचउ, छोपु-अछोपु करिवि को वंचउ।
हलसहि कलहु केण समाणउ, जहिँ जहिँ जोवउ तहिँ अप्पाणउ॥[5]

वचनिका एवं वचनिकाकार :

वचनिकाकार पं० पन्नालाल चौधरी द्वारा लिखी गई वचनिकाओं में से प्रस्तुत योगसार की वचनिका के प्रकाशन से पूर्व तत्त्वसार की वचनिका भी प्रकाशित हो चुकी है। यह वचनिका पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री द्वारा सम्पादित तत्त्वसार में समाविष्ट है।[6] वचनिकाओं के प्रसंग में डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने लिखा है कि (पं० पन्नालाल चौधरी ने) वसुनन्दिश्रावकाचार, जिनदत्तचरित्र, तत्त्वार्थसार; यशोधरचरित, पाण्डवपुराण, भविष्यदत्तचरित्र आदि ग्रन्थों पर भी वचनिकाएँ लिखी हैं, जिनकी कुल संख्या ३५ है।[7]

---

१. योगसार, पद्य ३४।
२. प्राकृतपैंगलम्, भाग १, पृ० १४८।
३. योगसार, पद्य ४७।
४. देखिये—हिन्दी शब्दसागर, तृतीय भाग; पृ० १५६६।
५. योगसार, पद्य ४०।
६. द्रष्टव्य, तत्त्वसार।
७. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, भाग २, पृ० ५१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वचनिका :

योगीन्दुदेव रचित योगसार पर पं० पन्नालाल चौधरी ने ढूंढारी भाषा में वचनिका लिखी है, जो इस ग्रन्थ में प्रकाशित है। इसमें प्रत्येक दोहा का सामान्य अर्थ करते हुए दोहागत पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण किया गया है और आवश्यकतानुसार उनके भेद-प्रभेदों पर भी प्रकाश डाला गया है। किसी-किसी दोहा का अर्थ करने के पश्चात् भावार्थ भी लिखा है, जिससे पाठकों को प्रत्येक विषय की जानकारी सरलता से मिल जाती है और वचनिकाकार द्वारा वचनिका लिखने के उद्देश्य की पूर्ति होती है।

वचनिकाकार :

पं० पन्नालाल चौधरी विक्रम की बीसवीं शती के विद्वान् हैं। इन्होंने तत्त्वसार की वचनिका वि० सं० १९३१[१] में और योगसार की वचनिका वि० सं० १९३२[२] में लिखी थी। संस्कृत एवं प्राकृत भाषा में रचित अनेक प्राचीन ग्रन्थों पर भी इन्होंने ढूंढारी भाषा में वचनिकाएँ लिखी हैं। इससे ज्ञात होता है कि ये राजस्थान के निवासी थे। इनका जन्म खण्डेलवाल जाति के पाण्ड्या गोत्र में हुआ था। इनके अग्रज विद्वानों में झूथाराम चौधरी, छाजूलाल पोपल्या एवं नाथूलाल दोसी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन विद्वानों ने पं० सदासुख कासलीवाल की संगति प्राप्तकर पहले अध्ययन किया था। तत्पश्चात् पं० पन्नालाल चौधरी ने भी जयपुर में विद्याभ्यास किया था। ये दुलीचन्द जी के सम्बन्धी थे और उन्हीं की प्रेरणा से पं० चौधरी ने इस ग्रन्थ की वचनिका लिखी थी।

अन्तिम प्रशस्ति :

योगसार की वचनिका के अन्त में पं० पन्नालाल चौधरी ने विभिन्न बीस

---

१. तत्त्वसार की वचनिका भई भव्य सुखकार।
वांचै पढ़ै तिनिकैं सही हो है जय जयकार॥
वैशाख कृष्णा सप्तमी गुरूवार शुभ जान।
उगणीसै इकतीस मित संवत्सर शुभ मान॥
लिखी वचनिका मंदमति पन्नालाल सुजान।
भविजन याकौं सोधियो क्षमा करहु बुधिवान॥
—तत्त्वसार वचनिका, अन्तिम प्रशस्ति, पद्य १-३; पृ० १३८

२. संवत्सर विक्रम तणौं उगणीसै बत्तीस।
सावण सुदी एकादशी ता दिन पूर्ण करीस॥
—योगसार; वचनिका; अन्तिम प्रशस्ति, पद्य २०, पृ० ३८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छन्दों में रचित एक प्रशस्ति दी है। जिससे वचनिकाकार एवं वचनिका लिखने के कारणों पर प्रकाश पड़ता है। वचनिकाकार से सम्बद्ध जानकारी का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। एतदतिरिक्त इस प्रशस्ति से कुछ ऐतिहासिक तथ्यों पर भी प्रकाश पड़ता है, अतः उनकी संक्षिप्त जानकारी यहाँ दी जा रही है।

पूना (महाराष्ट्र) से पन्द्रह कोश दूर फलटन नामक नगरी है। वहाँ हुमक बयक (बेंक) में उत्पन्न दुलीचन्द जी रहते थे। वे बालब्रह्मचारी थे। उन्होंने अनेक तीर्थ यात्राएँ की थीं। गृहत्यागी होने के कारण वे दूसरों के घर भोजन करते थे। उन्होंने विद्वानों से मान-सम्मान प्राप्त किया था। दुलीचन्द जी के एक सहायक मित्र हीराचन्द जी भाई थे, जो उन्हीं के कुल के थे। उन्होंने दुलीचन्द जी को विद्याध्ययन कराया था।

श्री दुलीचन्द जी को फलटन से भागचन्द जी तथा सेठ बंडी कस्तूरचन्द जी ले आये। वे क्रमशः देवरिया-प्रतापगढ़ (देवलिया परतापगढ़) प्रतिष्ठा कराने आये। वहाँ से इन्दौर के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराने हेतु सेठ फतेचन्द कुसला दुलीचन्द जी को इन्दौर ले आये। वहाँ से सेठ मूलचन्द जी नेमिचन्द जी, अजमेर ले आये और कुछ दिनों तक दुलीचन्द जी वहीं रहे। पुनः सेठ मूलचन्द जी श्री दुलीचन्द जी को जयपुर ले आये। उस समय जयपुर में राम-सिंह का शासन था। जयपुर में श्री दुलीचन्द जी पहले दीवान जी के मन्दिर में रहे, पुनः तेरापन्थी बड़े मन्दिर में रहने लगे। तत्पश्चात् दीवान अमरचन्द के पौत्र श्री उदयलाल और विनयपाल अपने मन्दिर में ले आये। वहाँ जयपुर में श्री दुलीचन्द जी ने चार अनुयोगों के चार ग्रन्थ-भण्डार अपने खर्चे से स्थापित किये। यही दुलीचन्द जी पं० पन्नालाल चौधरी द्वारा लिखी गई वचनिकाओं के प्रेरणास्रोत रहे हैं।

उपसंहार :

अपभ्रंश भाषा की दृष्टि से योगसार का विशेष महत्त्व है। वास्तव में यह अध्ययन का अपने आपमें एक स्वतन्त्र विषय है। इस प्रस्तावना में हमने भाषा विषयक विचार नहीं किया है। योगीन्दुदेव के दोनों अपभ्रंश ग्रन्थ—परमात्मप्रकाश और योगसार का स्वतंत्र रूप से भाषाशास्त्रीय अध्ययन किया जाना चाहिए।

आभार-प्रदर्शन :

'योगसार' वचनिका की हस्तलिखित 'मि०' प्रति दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर, मिरजापुर (उ० प्र०) के ग्रन्थ भण्डार से प्राप्त हुई है। इस प्रति को प्राप्त कराने में वहाँ के उत्साही कार्यकर्त्ता श्री सुधीरचन्द जैन (कटरा बाजीराव) का अनन्य सहयोग रहा है, अतः हम उनके हृदय से आभारी हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थ-सम्पादन की प्रेरणा हमें प्राच्यविद्याओं के मर्मज्ञ विद्वान् श्रद्धेय पं० फूलचन्द्र सिद्धान्ताचार्य से मिली थी। उन्होंने सम्पादन काल में हमें अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं और अन्त में वचनिका सहित मूल ग्रन्थ को सुनकर हमारा मार्गदर्शन किया है। इसी प्रकार श्रीमान् डॉ० राजाराम जैन (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत-प्राकृत विभाग, एच० डी० जैन कालेज, आरा) एवं श्रीमान् प्रो० उदयचन्द्र जैन (पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, दर्शन विभाग, संस्कृत-विद्या धर्मविज्ञान संकाय, का० हि० वि० वि०) ने कार्य को शीघ्र सम्पन्न करने हेतु हमें समय-समय पर प्रोत्साहित किया है। आदरणीय भाई सा० डॉ० कोमलचन्द्र जैन (रीडर एवं अध्यक्ष; पालि एवं बौद्ध अध्ययन विभाग, का० हि० वि० वि०) ने सम्पादन सम्बन्धी गुत्थियों को सुलझाने में हमारी सहायता की है। अतः उपर्युक्त विद्वानों के हम हृदय से आभारी हैं।

प्रस्तावना लिख जाने के पश्चात् आदरणीय डॉ० गोकुलचन्द्र जैन (रीडर एवं अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनागम विभाग, श्रमणविद्या संकाय, सम्पूर्णानन्द सं० वि० वि०, वाराणसी) ने उसे पढ़कर अनेक सुझाव दिये हैं। अतः हम उनके भी आभारी हैं।

प्रस्तावना लिखते समय हमें स्व० डॉ० ए० एन० उपाध्ये द्वारा सम्पादित परमात्मप्रकाश की प्रस्तावना के मूल एवं हिन्दी अनुवाद (अनुवादक : स्व० पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री) से सहायता मिली है। इसी प्रकार अन्य अनेक ग्रन्थों से सामग्री का उपयोग किया गया है; जिनका यथास्थान निर्देश कर दिया है। अत: हम उक्त ग्रन्थ-लेखकों/सम्पादकों के आभारी हैं।

ग्रन्थ जुटाने में चि० विनोदकुमार जैन ने सहयोग किया है। चि० आनन्द कुमार जैन एवं चि० अनामिका जैन ने अपनी बाल-चेष्टाओं से प्रभावित किया है। अत: ये स्नेह एवं आशीर्वाद के पात्र हैं।

ग्रन्थ-सम्पादन एवं प्रस्तावना लिखने में यद्यपि हमने सावधानीपूर्वक तथ्यों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है तथापि प्रमादवश यदि कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो विद्वज्जन उसे क्षमा करेंगे और उससे हमें अवगत कराने की कृपा करेंगे, जिससे अगले संस्करण में उसका संशोधन किया जा सके।

और अन्त में—

'जइ चुक्किज्ज छलं न घेत्तव्वं'

१० दिसम्बर, १९८७ डॉ० कमलेशकुमार जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्दर्भ-ग्रन्थ

अनेकार्थ ध्वनिमंजरी : महाक्षपणक, सम्पादक—श्री १०५ कुमारश्रमण सिद्धसागर जी महाराज; प्रकाशिका—श्री शान्तिसागर जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था, श्री शान्तिवीरनगर, श्रीमहावीरजी (राजस्थान); वी० सं० २४८९ ।

अपभ्रंश साहित्य, लेखक—प्रो० हरिवंश कोछड़, प्रकाशक—भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली ।

इष्टोपदेश : आचार्य पूज्यपाद, सम्पादक—जैनदर्शनाचार्य श्री धन्यकुमार जैन, प्रकाशक—परमश्रुत प्रभावक मंडल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास; द्वितीयावृत्ति, सन् १९७३ ।

चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर स्मृतिग्रन्थ, सम्पादक—श्री बालचन्द देवचन्द शहा, प्रकाशक—श्री चारित्रचक्रवर्ती १०८ आचार्य शान्तिसागर जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था, फलटण, सन् १९७३ ।

जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश, भाग ३, लेखक—क्षु० जिनेन्द्र वर्णी, प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् १९७२ ।

ठाणं—अंगसुत्ताणि, भाग १, सम्पादक—मुनि नथमल, प्रकाशक—जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज०), वि० सं० २०३१ ।

तत्त्वसार : आचार्य देवसेन, सम्पादक—पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, प्रकाशक—श्री सत्श्रुत सेवा-साधना केन्द्र, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण, सन् १९८१ ।

तत्त्वार्थसूत्र : आचार्य गृद्धपिच्छ; विवेचनकर्त्ता—पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, प्रकाशक—श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, भदैनी, काशी, प्रथम संस्करण; वी० नि० सं० २४७६ ।

नियमसार : आचार्य कुन्दकुन्द, हिन्दी अनुवादक—श्री मगनलाल जैन, प्रकाशक—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र), चतुर्थावृत्ति, वी० नि० सं० २५०३ ।

पञ्चास्तिकाय : आचार्य कुन्दकुन्द, अनुवादक—पन्नालाल बाकलीवाल, प्रकाशक—श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, तृतीयावृत्ति, वि० सं० २०२५ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमात्मप्रकाशः योगसारश्च : योगीन्दुदेव, सम्पादक—डॉ० ए० एन० उपाध्ये; प्रकाशक—श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद् राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला; श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, तृतीय संस्करण, सन् १९७३।

प्राकृतपैंगलम्, भाग १, सम्पादक—डॉ० भोलाशंकर व्यास, प्रकाशिका—प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी-५, सन् १९५९।

प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लेखक—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक—तारा पब्लिकेशन्स; कमच्छा, वाराणसी, प्रथम संस्करण; सन् १९६६।

बारह भावना : एक अनुशीलन, लेखक—डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल, प्रकाशक—पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर—३०२०१५; प्रथमावृत्ति, सन् १९८५।

बृहद्द्रव्यसंग्रह : आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव, ब्रह्मदेवकृत संस्कृत वृत्ति सहित, संशोधक—पं० मनोहरलाल शास्त्री, प्रकाशक—श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास (गुजरात); चतुर्थ संस्करण; वि० सं० २०३५।

मोक्षपाहुड—अष्टपाहुड : आचार्य कुन्दकुन्द, भाषा परिवर्तनकर्ता—पं० महेन्द्र कुमार जैन काव्यतीर्थ, प्रकाशक—श्री वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट, भावनगर (गुजरात), द्वितीयावृत्ति; वी० नि० सं० २५०२।

योगसार : योगीन्दुदेव, सम्पादक—डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, पुनर्मुद्रित, सन् १९६०।

योगसार टीका, भाषाटीकाकार—स्व० ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद, प्रकाशक—श्री लक्ष्मीनारायण पाटोदी, गुना (मध्यभारत)।

योगसार प्राभृत : आचार्य अमितगति, सम्पादक—श्री जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर', प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, प्रथम संस्करण; सन् १९६८।

वसुनन्दिश्रावकाचार : आचार्य वसुनन्दि, सम्पादक—पं० हीरालाल जैन सिद्धान्तशास्त्री, प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथमावृत्ति, सन् १९५२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समयसार : आचार्य कुन्दकुन्द, जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति सहित, हिन्दी टीका—श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज, प्रकाशक—श्री दिगम्बर जैन समाज, अजमेर, प्रथमावृत्ति ।

सर्वार्थसिद्धि : पूज्यपाद, सम्पादक—पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, सन् १९७१ ।

सिद्धान्तसारादिसंग्रह, सम्पादक—पं० पन्नालाल सोनी, प्रकाशिका—मा० दि० जैन ग्रन्थमाला समिति, श्री नाथूराम प्रेमी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई, प्रथमावृत्ति, वि० सं० १९७९ ।

हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, लेखक—डॉ० नामवरसिंह; प्रकाशक—लोक भारती प्रकाशन, १२-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद—१, पंचम संस्करण, सन् १९७१ ।

हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, लेखक—कामताप्रसाद जैन, प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण, सन् १९४७ ।

हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, भाग २, लेखक—नेमिचन्द शास्त्री, प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण, सन् १९५६ ।

हिन्दी शब्दसागर, तृतीय भाग, मूल सम्पादक—श्यामसुन्दरदास बी० ए०; प्रकाशक—काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सन् १९६७ ।

हिन्दी साहित्य (उसका उद्भव और विकास), लेखक—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक—अत्तरचन्द कपूर एण्ड सन्ज, देहली, सन् १९५२ ।

हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग, हिन्दी साहित्य की पीठिका (द्वितीय खण्ड : साहित्यिक आधार तथा परम्परा, लेखक—डॉ० भोलाशंकर व्यास), सम्पादक—राजबली पाण्डेय, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण, वि० सं० २०१४ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योगसार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमद्-योगीन्दुदेव-विरचित

योगसार

ओं नमः सिद्धेभ्यः

अथ जोगसार जोगेंद्रदेव मुनिराजकृत प्राकृत (अपभ्रंश) दोहा की वचनिका लिखिए है। आगै मंगलकै निमित्त विघ्न मेटनेंकै निमित्त सिद्धनिकूं वंदना करै है—

दोहा

णिम्मल-झाण-परट्ठिया[1] कम्म-कलंक डहेवि।
अप्पा लद्धउ जेण परु[2] ते परमप्प णवेवि ॥ १ ॥

अर्थ—जो निर्मल ध्यानविषैं तिष्ठि करि आठ ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय—ए आठ कर्मरूप कलंककूं भस्म करि, अर जानैं आत्माकूं पाय, अर पर-आत्मा (परमात्मा) भए—सिद्ध भए तिन सिद्धरूप परमात्माकूं नमस्कार करि, अर आगैं अर्हंतनिकूं नमस्कार करै है ॥ १ ॥

दोहा

घाइ-चउक्क हनेवि किउ णंत-चउक्क[3] पदिट्ठु।
ताहि जिणिंदइ[4] पय णविवि अक्खमि कव्वु सुइट्ठु ॥ २ ॥

अर्थ—घातियाच्यारि—ज्ञानावरण अर दर्शनावरण अर मोहनीय अर अन्तराय—ये च्यारि घातियाकर्म नास करि, अनन्तचतुष्टय—जो अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, अनन्तसुखकूं प्राप्त होय अर अर्हंत भया ताकूं नमस्कार करि अथवा जिनेन्द्रके पद—जे चरण तिनिनैं नमस्कार करि कछु इक भला इष्ट काव्यकूं कहौ हौं ॥ २ ॥

आगैं कहनेंकी प्रतिज्ञा जोगींद्रदेव करै है—

दोहा

संसारहँ भयभीयहँ मोक्खहँ लालसियाहँ[5]।
अप्पा संबोहण कहहँ[6] दोहा एक्कमणाहँ ॥ ३ ॥

---

१. परिट्ठया : आ०।
२. परू : मि०।
३. घाइचउक्कहँ किउ विलउ णंत-चउक्कु : आ०।
४. तह जिणइंदहँ : आ०।
५. लालसयाहँ : आ०।
६. कयइ कय : आ०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—संसारका जो भय ता करि भयभीय भया सन्ता अर मोक्ष-लक्ष्मीकी लालहसा करि युक्त भया सन्ता, मैं हूँ सो मेरे संबोधनके अर्थि एकाग्रचित्त होय एक सौ आठ दोहा कहूँगा ॥ ३ ॥

आगैं संसारका अर कालका स्वरूप कहै है—

दोहा

कालु अणाइ अणाइ जिउ[1] भवसायरु[2] जि अणंतु ।
मिच्छादंसण[3]-मोहियउ[4] णवि सुह-दुक्ख जि पत्तु ॥ ४ ॥

अर्थ—काल है सोहू अनादिका है अर जीवहू अनादि है अर संसार-सागर अनन्ता है, सो मिथ्यादर्शन करि मोहित जीव है सो सुखकूं नांही प्राप्त भया, अनादिकालका मिथ्यात्व करि मोहित अज्ञानी भया, आपाका ज्ञान बिनां दुःख ही पाया ॥ ४ ॥

दोहा

जइ बीहउ चउ-गइ-गमणा[5] तो[6] परभाव चएहि[7] ।
अप्पा झायहि णिम्मलउ जिम सिव-सुक्ख लहेहि[8] ॥ ५ ॥

अर्थ—हे जीव ! जो तू च्यारि गतिका भ्रमणतैं भयवान है, डरपै है, तो पर-पदार्थनिमैं आपा माननां छोड़ि, अर निर्मल, आत्मस्वरूप, कर्म-कलंक रहित, शुद्ध, चिदानन्द रूप निजात्म-तत्त्वकूं ध्यावहुं, ज्यौं तूं शिव जो समस्त कर्म रहित अविनाशी स्वभावरूप मोक्षसुखकूं प्राप्त होइ ॥ ५ ॥

दोहा

तिपयारो अप्पा मुणहि परु[9] अंतरु बहिरप्पु ।
पर-झायहि[10] अंतरु[11] सहिउ बाहिरु[12] चयहि णिभंतु ॥ ६ ॥

अर्थ—आत्मा तीन प्रकार भेद सहित जांन—एक तो परमात्मा अर दूजा अन्तरात्मा अर तीजा बहिरात्मा—ऐसैं तीन प्रकार आत्माके भेद जाणि करि बहिरात्मापनां छोड़ि, अर अन्तरात्मा सहित भ्रांति रहित भया संता परमात्माकूं ध्यावहूं ॥ ६ ॥

---

१. जीउ : मि० ।
२. भवसायर : मि० ।
३. मिछादंसण : मि० ।
४. मोहिउ : मि० ।
५. गमणु : मि० ।
६. तउ : मि० ।
७. चऐवि : मि० ।
८. लहेवि : मि० ।
९. पर : मि० ।
१०. जायहि : आ० ।
११. अंतर : आ० ।
१२. वाहिर : मि० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

मिच्छा-दंसण-मोहियउ[1] परु अप्पा ण मुणेहि।
सो बहिरप्पा जिण भणिउ पुण संसार भमेइ॥ ७॥

अर्थ—मिथ्यादर्शन जो कुज्ञान, कुदर्शन, अर खोटा हिंसा सहित आचरण, अर परवस्तु जो परपदार्थ—धन, स्त्री, देह, हवेली, मकान, तिनमैं आत्मा जांनि आपा माननां सो ही भया मिथ्यादर्शन ता करि मोहित जो जीव है, सो पर-पदार्थविषै आत्मा जानैं, यह पदार्थ स्त्री, पुत्र, धन, मकान मेरा है; अर इनिका मैं हूँ—अैसैं परमैं आत्मा जांनि रचै है सो बहिरात्मा जानि, जिन भगवाननै अैसैं कह्या है, सो बहिरात्मा बहुरि संसार चतुरगतिरूप संसार ताविषै परिभ्रमण अनादिकालका करै है॥ ७॥

दोहा

जो परियाणइ अप्पु[2] परु जो परभाव चएइ।
सो पंडिउ अप्पा मुणहु[3] सो संसारु[4] मुएइ॥ ८॥

अर्थ—जो आत्मा अपनां स्वरूप जाणैं अर धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य अर पुद्‌गलद्रव्य—इनिका स्वरूप आपतैं अन्य जाणैं; अर परभाव जे राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय—इनिकौं त्यागै सो पंडितआत्मा जाणि; सो संसारतैं अन्तरात्मा छूटै है॥ ८॥

दोहा

णिम्मलु णिक्कलु सुद्धु जिणु विण्हु[5] बुद्धु सिव संतु।
सो परमप्पा जिण-भणिउ एहउ जाणि णिभंतु॥ ९॥

अर्थ—निर्मल कहिए कर्मकलंक रहित, अर सात प्रकारका शरीर—औदारिक, औदारिकमिश्र, अर वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र, अर आहारक, आहारकमिश्र, अर कार्माण—इनि शरीर रहित, शुद्धज्ञान स्वरूप शरीरमय, अर शुद्ध निज ज्ञानानन्दमय टंकोत्कीर्ण ज्ञानका पुंज, शुद्ध अर कर्मरूप बैरीकौं जीति जिनरूप, अर विष्णुरूप कहिए ज्ञान करि जगतविषैं व्याप्त, अर बुद्ध कहिए परसहाय रहित ज्ञानका धारक बुद्ध अथवा देवनि करि पूज्य बुद्ध (बुद्धि के धारणें तैं बुद्ध, अर शिव कहिए

१. मिछा-दंसण-मोहिउ : मि०।
२. अप्प : मि०।
३. मुणहि : मि०।
४. संसार : मि०।
५. विएह : मि०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सदाकाल कल्याणमय सुखरूप, अर सत कहिए सदाकाल विद्यमान सो परमात्मा जिन भगवान करि कह्या भ्रांतिरहित जांणि, परमात्माका रूप जांननां ॥ ९ ॥

दोहा

देहादिउ[1] जे पर[2] कहिया ते अप्पाणु[3] मुणेइ।
सो बहिरप्पा जिणभणिउ पुणु[4] संसारु[5] भमेइ ॥ १० ॥

अर्थ—देहादिक जे परवस्तु है तहां द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादिक, भाव-कर्म रागद्वेष-मोहादिक, अर नोकर्म औदारिकादिक सरीर—ए परवस्तु है, तिनकौं जो आत्मा जानैं सो बहिरात्मा जिनभगवान कह्या, सो बहुरि संसारविषैं भ्रमण करै है ॥ १० ॥

दोहा

देहादिउ[6] जे पर[7] कहिया ते अप्पाणु ण[8] होइ[9]।
एउ[10] जाणि पुणु[11] जीव तुहुँ[12] अप्पा अप्प मुणेहि[13] ॥ ११ ॥

अर्थ—देहादिक जे पौद्‌गीलक भाव ते परभाव जांणि, ते देहादिक आप रूप नाहीं होइ, हे जीव ! तू असा जांणि, आत्मा ज्ञाता-दृष्टाकूँ आत्मा जाणि, ते देहादिक तो जड़ है ॥ ११ ॥

आगैं औरहू कहै है—

दोहा

अप्पा अप्पउ जइ[14] मुणहि तो णिव्वाणु लहेहि।
पर[15] अप्पा जइ[16] मुणहि[17] तुहुँ तो[18] संसार भमेहि[19] ॥१२॥

अर्थ—जो आत्मानैं आत्मा जाणैं तो निर्वाणकी प्राप्ति होइ, अर जो

---

१. देहादिक : मि० ।
२. परि : आ० ।
३. अप्पाण : मि० ।
४. पुण : मि० ।
५. संसार : मि० ।
६. देहादिक : मि० ।
७. परि : आ० ।
८. अप्पा ण : मि० ।
९. होहिँ : आ० ।
१०. इउ : आ० ।
११. जाणेविणु : आ० ।
१२. तुहूँ : मि० ।
१३. मुणेइ : मि० ।
१४. जउ : मि० ।
१५. अर : मि० ।
१६. जउ : मि० ।
१७. मुणिहि : मि० ।
१८. तउ : मि० ।
१९. भमेइ : मि० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो पर पुद्गलादिकनैं आत्मा जानैंगा तो संसारविषैं परिभ्रमण करैगा, अैसा जांननां ॥ १२ ॥

दोहा

इच्छा रहियउ तव[1] करहि अप्पा अप्पु[2] मुणेहि ।
तो[3] लहु पावहि[4] परम-गइ फुडु[5] संसारु[6] ण एहि ॥ १३ ॥

अर्थ—इच्छा रहित तो तप करै अर आत्मानें आत्मा जाणैं, मुक्ति आदि पदार्थकी हू वांछा नांही करै, निरवांछक होय तप करै, आत्मानैं आत्मा जानैं, शुद्धोपयोग रूप प्रवर्तैं, शुद्ध दृष्टि राखै तो शीघ्र ही परम-गति जो मोक्षगतिकूं पावै, फिर संसारविषैं नांही आवै ॥ १३ ॥

दोहा

परिणामे बंधु जि कहिउ मोक्ख वि[7] तह जि वियाणि ।
इउ जाणेविणु[8] जीव तुहुँ तहभाव हु[9] परियाणि[10] ॥ १४ ॥

अर्थ—हे जीव ! विभाव भाव परिणामनि करि ही तू बंध जाणि, अर स्वभाव भाव करि मोक्ष होय है इह जाणि । हे जीव ! तू बंध-मोक्ष का कारण परिणाम ही जाणि ॥ १४ ॥

दोहा

अह पुणु[11] अप्पा णवि मुणहि[12] पुण्णु जि[13] करहि असेस[14] ।
तो वि ण[15] पावहि[16] सिद्धि सुहु पुणु[17] संसारु[18] भमेस[19] ॥ १५ ॥

अर्थ—अथवा बहुरि आत्माकूं तो नांही जाणैं अर केवल मिथ्या स्वभाव करि मोहित भया संता समस्त पुण्यादिक कर्म करै तो भी सिद्ध सुखकूं नाही पावै है, काहेतैं आत्मज्ञान वहिर्भूतकी क्रिया समस्त

---

१. इछा रहिउ तउ : मि० ।
२. अप्प : मि० ।
३. ता : मि० ।
४. पावइ : मि० ।
५. फडु : मि० ।
६. संसार : मि० ।
७. जि० : मि० ।
८. जाणेविण : मि० ।
९. हि : मि० ।
१०. परयाणि : मि० ।
११. पुण : मि० ।
१२. मुणइ : मि० ।
१३. पुण वि : मि० ।
१४. असेसु : मि० ।
१५. णु : मि० ।
१६ पावहु : मि० ।
१७. पुण : मि० ।
१८. संसार : मि० ।
१९. भमेसु : मि० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार परिभ्रमणका कारण है, ताहीतैं वहुरि संसारविषैं परिभ्रमण करै है ॥ १५ ॥

दोहा

अप्पा-दंसणु[1] एक्कु[2] परु अण्णु ण किं[3] पि वियाणि ।
मोक्खहँ कारण जोइया णिच्छय[4] एहउ[5] जाणि ॥ १६ ॥

अर्थ—आत्माका एक दर्शन ही उत्कृष्ट है। आत्माका दर्शन बिनां अन्य कछू नांही जांननां। हे योगिन ! मोक्षका कारण निश्चयनय करि ए ही जांननां, व्यवहारनय करि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, दान, पूजा, महाव्रत, अणुव्रत, मुनि-श्रावकका भेद रूप धर्म है सोहू परंपराय करि मोक्षका कारण है ॥ १६ ॥

दोहा

मग्गण गुण ठाणइ[6] कहिया विवहारेणवि दिट्ठि[7] ।
णिच्छय[8] णय[9] अप्पा मुणहि जिम पावहु परमेट्ठि ॥ १७ ॥

अर्थ—चोदह मार्गणाविषैं जीवका स्वरूप कह्या तहां जीव जान लेना। गति च्यारते कौंन—नरक, तिर्यंच, देवगति, मनुष्य—इनिविषैं जीव-स्वरूप व्यवहारतै जांननां। अर पांच इंद्रियते कौन—स्पर्शन, रसन, घ्रान, चक्षु, श्रोत्र। अर काय छै—पृथ्वीकाय, अपकाय, तेज-काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय। अर पनरा जोग—मनका जोग च्यारि—सत्यमन, असत्यमन, उभयमन, अनुभयमन। अर च्यारि वचनका जोग—सत्यवचन, असत्यवचन, उभयवचन, अनुभयवचन। अर कायका सात जोग—औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र अर कार्माण। अर वेद तीन—पुरुष-वेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद। अर कषाय २५—अनंतानुबंधी ४ कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यान च्यारि कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ; अर प्रत्याख्यान कषाय ४—क्रोध, मान, माया, लोभ; अर संजुलनकषाय ४—क्रोध, मान, माया, लोभ; अर नोकषाय ९—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद—ऐसैं

१. दंसण : मि० ।
२. ऐक्क : मि० ।
३. अणु ण कि : मि० ।
४. णिछय : मि० ।
५. ऐहु : मि० ।
६. ठाण : मि० ।
७. विविहारेण पदिट्ठि : मि० ।
८. णिछय : मि० ।
९. णइँ : आ० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पचीस। अर ज्ञान आठ प्रकार—सुज्ञान ५—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान; अर कुज्ञान ३—कुमति, कुश्रुति, कुअवधि—अैसैं आठ प्रकार ज्ञान है। अर संयम सात—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात, संयमासंयम, असंयम—अैसैं सात संयम है। अर च्यारि दर्शन—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन—अैसैं च्यारि दर्शन है। अर लेश्या छह—अशुभलेश्या ३—कृष्ण, नील, कापोत,। अर शुभलेश्या तीन—पीत, पद्म, शुक्ल—अैसैं लेश्यानिमैं जीव है। अर भव्य, अभव्य—इनिमैं जीव है। अर सम्यक्त्व छह—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक—इनि सम्यक्त्वनिके भावनिविषैं जीव जांननां। अर संज्ञी, असंज्ञोमैं जीव है। अर आहारक, अनाहारक—दोऊनिविषैं जीव है—अैसैं चौदह मार्गणानिमैं जीव जांननां तथा चौदह गुणस्थाननिमैं जीव जांननां—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, असंयत, देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, उपशांतमोह, क्षीणमोह, सयोगीजिन, अयोगीजिन—इनि चौदह गुणस्थाननिमैं जीवका स्वरूप कह्या सो सर्व व्यवहारनयकी दृष्टि जांननी। अर निश्चयनय करि जो आत्मानै जैसैं जाणैं तैसैं ही परमेष्ठी पद पावै॥ १७॥

दोहा

गिहि[1]-वावार-परिट्ठिया[2] हेयाहेउ मुणंति।
अणुदिणु[3] झायहिँ देउ जिणु लहु णिव्वाणु[4] लहंति॥ १८॥

अर्थ—धरके व्यापार मांहि प्रवर्तता भी संसारके कार्य करता थका भी जो हेयाहेय—जो त्यागनैं जोग्य रागद्वेष, मोहादिक, काम-क्रोधादिक तिनकौं जानता त्यागै है। अर ग्रहण करणें जोग्य जे तत्व श्रद्धानादिक अर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप आपका निज स्वरूपकौं जांनता निरंतर ग्रहण करै है। अर जिनदेवकूं ध्यावै है तो शीघ्र ही मोक्षकूं प्राप्त होय है॥ १८॥

---

१. गिह : मि०।
२. परट्ठिया : मि०।
३. अणुदिण : मि०।
४. णिव्वाण : मि०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

जिणु[1] सुमिरहु जिणु[2] चिंतवहु जिणु[3] झायहु सुमणेण ।
सो झायंतहँ[4] परम-पउ लब्भइ एक्क[5]-खणेण[6] ॥ १९ ॥

अर्थ—भो भव्यहो ! जिन भगवानकूं सुमिरहु, अर जिन भगवानकूं चिंतवन करिहु, अर भला मन करि जिन भगवानकूं ध्यावहु । तिस भगवानकूं ध्यावतां संता एक क्षण मात्रमैं परम पद जो मोक्ष पदकूं पावै है ॥ १९ ॥

दोहा

सुद्धप्पा अरु जिणवरहँ भेउ म किं पि[7] वियाणि ।
मोक्खहँ कारणे[8] जोइया णिच्छइँ[9] एउ विजाणि ॥ २० ॥

अर्थ—भो भव्य ! शुद्धात्माविषैं अर जिन भगवानविषैं क्यौंहू भेद नहीं है । भो जोगिन ! मोक्षका कारण निश्चय करि एह जाणि ॥ २० ॥

दोहा

जो जिणु सो अप्पा मुणहु इहु[10] सिद्धंतहँ[11] सारु[12] ।
इउ जाणेविणु जोइयहो[13] छंडहु मायाचारु ॥ २१ ॥

अर्थ—जो जिन भगवान है, सो ही आतमा जाणहु । चिदानंद ज्ञानमयी शुद्धनय करि निजातमा ही जिन भगवान समान जानना—एही सिद्धांतका सार है । या प्रकार जाणि करि भेद भावना नांही करि सकल मायाचार कर्मका द्वैतभावकूं छोड़हु ॥ २१ ॥

दोहा

जो परमप्पा सो जि हउँ जो हउँ सो परमप्पु ।
इउ जाणेविणु जोइया[14] अण्णु म[15] करहु वियप्पु ॥ २२ ॥

---

१. जिण : मि० ।
२. जिण : मि० ।
३. जिण : मि० ।
४. झायहतह : मि० ।
५. इक्क : मि० ।
६. स्वरेण : मि० ।
७. किमपि : मि० ।
८. कारण : मि० ।
९. णिछ : मि० ।
१०. दुहु : मि० ।
११. सिद्धांतहु : मि० ।
१२. सार : मि० ।
१३. जोइहु : मि० ।
१४. जोइया : मि० ।
१५. असा म : मि० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—जो परमात्मा है सो मैं हूँ, अर जो मैं हूँ सो परमात्मा है। अहौ जोगीश्वर यह जांणि अर दूजा विकल्प मति करै, आत्मामैं अर परंमात्मामैं निश्चयकरि भेदभाव मति करै, अनंतगुणात्मा आत्मानैं तू जाणि। जो परमात्मा सो ही मैं हूँ, लोकका स्वामी मेरा आत्मा है॥ २२॥

दोहा

सुद्ध-पएसहँ पूरियउ लोयायास-पमाणु।
सो अप्पा अणुदिणु[1] मुणहु[2] पावहु लहु णिव्वाणु॥ २३॥

अर्थ—यह आत्मा है सो शुद्ध प्रदेस जे असंख्यात प्रदेशनिकरि पूरित लोकाकास प्रमाण है। सो आत्मा जो निरंतर जानै है, अनुभव करै है, सो पुरुष शीघ्र ही मोक्ष पावै है॥ २३॥

दोहा

णिच्छइँ[3] लोय-पमाणु[4] मुणि ववहारेँ[5] सुसरीरु।
एहउ अप्प सहाउ मुणि लहु पावहि[6] भवतीरु॥ २४॥

अर्थ—निश्चयनय करि आत्मा लोक प्रमाण तूं जांणि। अर व्यवहारनय करि आत्मा सरीर प्रमान जांणि। अैसा आत्मा निरंतर जानैं है, सो पुरुष शीघ्र ही निर्वाणकूं पावै है। वा भव जो संसारका जामण-मरण ता का तीर जो अभाव सो ही निर्वाण कहिए मोक्षकूं जाय है॥ २४॥

दोहा

चउरासी[7] लक्खहिँ[8] फिरिउ[9] कालु[10] अणाइ अणंतु।
पर सम्मत्तु[11] ण लद्धु जिय एहउ जाणि णिभंतु॥ २५॥

अर्थ—चौरासी लाख जोनिविषैं हे जीव! तू कर्म बंधके योगतैं अनादि अनंतकाल पर्यंत फिर्‌या, परंतु केवल शुद्ध तत्वार्थ श्रद्धान रूप सम्यक्त्वकूं नांही पाया, यह तू निश्चै जाणि। यामैं भ्रांति नांही जांन।

---

१. अणुदिण : मि०।
२. मुणिहु : मि०।
३. णिछइ : मि०।
४. पमाण : मि०।
५. ववहारइ : मि०।
६. पावहु : मि०।
७. चौरासी : मि०।
८. लक्ख : मि०।
९. फिरहु : मि०।
१०. काल : मि०।
११. समतु : मि०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अैसैं ऐकेंद्रीकी जोनि पृथ्वी की सात लाख, अपकी सात लाख, तेजकी सात लाख, वायुकी सात लाख, प्रत्येक वनस्पतीकी दश लाख, इतर-निगोद सात लाख, नित्य निगोद सात लाख अर विकलत्रयकी वेंद्री दोय लाख, तेंद्री दोय लाख, चोइंद्री दोय लाख, पंचेद्री नारकी च्यार लाख, तिरजंच च्यार लाख, देव च्यार लाख, मनुष्य चोदा लाख— अैसैं चौरासी लाख जोनि भेदनिमैं भ्रमण करै है ॥ २५ ॥

दोहा

सुद्धु सचेयणु[1] बुद्धु[2] जिणु केवलणाणु[3] सहाउ।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु जो[4] चाहहु[5] सिव-लाहु ॥ २६ ॥

अर्थ—शुद्ध, सचेतन, बुद्ध, जिन, केवलज्ञान है स्वभाव जाका, अैसा आत्माकूं जो मोक्षका लाभ चाहै है तो निरंतर जानहु।

भावार्थ—हे जीव ! तू शुद्ध नय करि आपकौं जाणि। कैसा शुद्ध कहिए कर्म कलंक रहित अर चेतना सहित स्वयं बुद्ध जिन भगवान त्रयोदश गुणस्थानवर्ती केवलज्ञान स्वभाव सो निरंतर अनुभवन करिहु जो तेरै मोक्षकी चाहि है तो तेरै अैसैं भावना भावतैं मोक्षका लाभ होयगा ॥ २६ ॥

दोहा

जाम[6] ण भावहि[7] जीव तुहुँ णिम्मल अप्प सहाउ।
ताम ण लब्भइ[8] सिव-गमणु जहिँ भावइ[9] तहिँ जाउ ॥ २७ ॥

अर्थ—हे आत्मन ! जितनैं निर्मल आत्मस्वभावकूं नांही भावै है, तितनैं मोक्षका गमनकूं नांही प्राप्त होयगा। जहां भावै तहां ही जाहु ॥ २७ ॥

दोहा

जो तइलोयहँ झेउ[10] जिणु सो अप्पा णिरु वुत्तु[11]।
णिच्छय[12]-णय एमइ[13] भणिउ एहउ जाणि णिभंतु ॥ २८ ॥

---

१. सचेयण : मि०।
२. बुद्ध : मि०।
३. केवलणाण : आ०।
४. जइ : आ०।
५. चाहु : मि०।
६. जाव : मि०।
७. भावहु : मि०।
८. लभइ : मि०।
९. भावहु : मि०।
१०. झेवु : मि०।
११. णिरू वुतु : मि०।
१२. णिछइ : मि०।
१३. इम : मि०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—जो तीन लोकके लोकनि करि ध्यावनें जोग्य जिन भगवान सो ही आप (आत्म-) रूप है अैसैं निश्चयनय कहै है, यामैं भ्रान्ति नांही।

भावार्थ—यद्यपि व्यवहारनय करि संसारी अर सिद्ध आत्माविषैं भेद है, तथापि निश्चयनय करि भेदस्वरूप कछू नांही है ॥ २८ ॥

दोहा

वय-तव-संयम-मूलगुण मूढहँ मोक्ख ण वुत्तु।
जाव ण जाणइ इक्क परु[1] सुद्धउ भाउ पवित्तु ॥ २९ ॥

अर्थ—मूढ़ जे है तिनिकूं व्रत पंच कहिए महाव्रत पाँच, अर बारह प्रकार अनशनादिक तप, अर संजम सात प्रकार—सामायिक, छेदोप-स्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात, संयमासंयम, असंयम अर अठाइस मूलगुण अर पाँच सुमति (समिति), तीन गुप्ति—इनिकूं मोक्षका कारण कह्या। परन्तु जितनैं एक शुद्ध स्वभावरूप परमात्माकूं नांही जाणैं तब तक एह क्रियाकांडविषैं ही लीन होय तो मोक्षकी प्राप्ति होती नांही, अैसा जांननां ॥ २९ ॥

दोहा

जो[2] णिम्मल अप्पा मुणइ वय-संजम-संजुत्तु।
तो[3] लहु पावइ सिद्धि-सुहु[4] इउ जिणणाहहँ[5] वुत्तु[6] ॥ ३० ॥

अर्थ—जो निर्मल कर्मकलंक रहित शुद्ध आत्माकूं व्रत, संजम, तप संयुक्त भया सन्ता जानैं है तो शीघ्र ही सिद्ध सुखकूं प्राप्त होइ है, अैसें जिन भगवान कहै है ॥ ३० ॥

दोहा

वय[7] तव संजमु[8] सीलु जिय ए सव्वइँ[9] अकयत्थु।
जाव ण जाणइ इक्क परु सुद्धउ भाउ[10] पवित्तु[11] ॥ ३१ ॥

अर्थ—हे जीव ! व्रत, तप, संजम, सीलका पालनां—ए सर्व क्रिया वृथा है। जितनैं एक असहाय परम कहिए सकल पदार्थविषैं सारभूत

---

१. परु : आ०।
२. जइ : आ०।
३. तउ : मि०।
४. सुह : आ०।
५. जिणणाह : मि०।
६. उत्तु : आ०।
७. वउ : आ०।
८. संजम : मि०।
९. सव्वे : मि०।
१०. भाव : मि०।
११. पवितु : मि०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्ध पवित्र अैसा आत्माकूं नांही जाणैं है, तब लग सारा क्रियाकांड वृथा है।

भावार्थ—आत्मज्ञान विनां वहिरात्माकी क्रियाकांड सकल निरर्थक है ॥ ३१ ॥

दोहा

पुण्णि[1] पावइ सग्ग जिउ[2] पावएँ[3] णरय-णिवासु।
वे छंडिवि[4] अप्पा मुणइ तउ लब्भइ[5] सिववासु ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे जीव ! पुण्य प्रकृतिका वन्ध थको स्वर्गकी प्राप्ति होय अर पाप प्रकृति करि नरकका निवासका स्थान पावै है। अर दोऊ पुण्य-पाप प्रकृतिकूं छोड़ि अर शुद्ध आत्माकूं अनुभव करै, तव मोक्षका वासकूं प्राप्त होइ है ॥ ३२ ॥

दोहा

वउ तउ संजमु[6] सीलु[7] जिय[8] इउ[9] सव्वइँ ववहारु।
मोक्खहँ कारणु[10] एक्कु[11] मुणि जो तइलोइहँ[12] सारु ॥ ३३ ॥

अर्थ—हे जीव ! व्रत तो वारा प्रकारका—पांच इंद्रियनिका रोकना, अर छठा मनका रोकना—यह छह प्रकारका तो इन्द्रिय संजम रूप व्रत; अर पांच थावरनिकी हिंसाका त्याग, अर एक त्रसकी हिंसाकी त्याग—यह बारह प्रकारका संयम, अर बारह प्रकारका तप—अनशन, अवमोदर्य अर व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग अर विविक्त शय्यासन अर काय-क्लेश—छह प्रकारका यह वाह्य तप; अर छह प्रकारका ही अभ्यंतर तप—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग, ध्यान—ए बारह भेद रूप तप जांननां। अर संजम, शील—ए सारा व्यवहारनय करि मोक्षका कारण है, अर निश्चयनय करि एक तीन लोकविषैं सार-भूत मोक्षका कारण शुद्धात्माका अनुभव ही जाननां जोग्य है, उपादेय है, ग्रहण करने जोग्य है ॥ ३३ ॥

---

१. पुण्णई : मि०।
२. जिय : मि०।
३. पावइ : मि०।
४. छंडेवि : मि०।
५. लव्भइ : मि०।
६. संजम : मि०।
७. सील : मि०।
८. जिया : आ०।
९. इय : मि०।
१०. कारण : मि०।
११. ऐक्क : मि०।
१२. तइलोइहु : मि०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

अप्पा अप्पइ जो मुणइ जो[1] परभाउ[2] चएइ।
सो पावइ सिवपुर[3]-गमणु जिणवरु[4] एम[5] भणेइ॥ ३४ ॥

अर्थ—जो पुरुष आपनैं आपविषैं ही जाणैं है, आप ही करि सो परभाव जे पर पुद्गल संयोग जनित जे भाव रागद्वेष मोहादिक तिनका त्याग करै है, सो पुरूष मोक्षरूप नगरविषैं गमनकूं प्राप्त होय है, जिन भगवान या प्रकार कहै है॥ ३४ ॥

दोहा

छह दव्वइं[6] जे जिण कहिया णव पयत्थ जे तत्त।
विवहारेण य उत्तिया ते जाणियहि -पयत्त[7]॥ ३५॥

अर्थ—छह द्रव्य—जे जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य अर पुद्गलद्रव्य—जे जिन भगवान कह्या; अर नव पदार्थं—जे जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य, पाप—एह नव पदार्थं जिन भगवान व्यवहारनय करि कह्या, ते पदार्थं जिन भगवान करि कह्या जांणनां जोग्य है॥ ३५ ॥

दोहा

सव्व अचेयण[8] जाणि जिय एक्क सचेयणु[9] सारु[10]।
जो जाणेविणु परम-मुणि लहु पावइ[11] भवपारु[12]॥ ३६ ॥

अर्थ—ए छह द्रव्य, नव पदार्थं कहे ते सर्वं अचेतन, हे जीव ! तूँ जाणि, तिनविषैं एक जीवद्रव्य सारभूत आदेय है, ताकूं परम मुक्तिरूप जांणि करि मुनि है सो शीघ्र ही भव जो पंच परावर्तन रूप संसार ताके पारकूं प्राप्त होय है।

भावार्थ—सप्त तत्व, नव पदार्थ—इनिका स्वरूप जाणि अर सारभूत शुद्ध निजात्म तत्वकूं अनुभव करि, ध्याय करि सर्वं मुनीश्वर शीघ्र ही मुक्तिकूं प्राप्त होय है॥ ३६ ॥

---

१. सो : मि०।
२. परभाव : मि०।
३. सिवपुरि : आ०।
४. जिणवर : मि०।
५. ऐउ : मि०।
६. दव्व : मि०।
७. पयत्थ : मि०।
८. अचेयणि : मि०।
९. सचेयण : मि०।
१०. सार : मि०।
११. जावै : मि०।
१२. पार : मि०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

जो[1] णिम्मलु[2] अप्पा मुणहि छंडिवि[3] सहु ववहारु[4]।
जिण-सामिउ[5] एमइ[6] भणइ लहु पावइ भवपारु[7] ॥ ३७ ॥

अर्थ—अहो हंस ! जो तू सकल कर्म उपाधि रहित निर्मल आत्मा है सो जाणि। अर सकल जे विवहार कहतां विभाव परिणाम जे कर्मके उदय करि परणमें भाव तिननैं छांणि करि, शुद्ध आत्माका आलंवन करि, जिनस्वामी या प्रकार कहै है। सुद्ध आत्माका अनुभवी जीव है सो तत्काल संसारका पारकूं प्राप्त होय, मुक्ति जाय है ॥ ३७ ॥

सोरठा

जीवाजीवहँ भेउ जो जाणइ तिं[8] जाणियउ।
मोक्खहँ कारण एउ भणइ[9] जोइ[10] जोइहिं[11] भणिउँ ॥ ३८ ॥

अर्थ—जीव अर अजीव—इनिका भेद जो जाणैं सो ही पुरुष ज्ञायक है, ज्ञाता है। अर मोक्षका कारण यह भेदग (भेदक) ज्ञान ही है, अैसें जोगींद्रदेव भी कहै है, अर पूर्व योगीहू अैसें ही कह्या है ॥ ३८ ॥

सोरठा

केवलणाण-सहाउ सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ।
जइ[12] चाहिहि[13] सिवलाहु भणइ जोइ जोइहिँ भणिऊँ ॥ ३९ ॥

अर्थ—हे जीव ! तूं केवलज्ञान स्वभाव है, सो आत्मा जांनि। क्यौंकि आत्मा बिनां केवलज्ञान स्वभाव कौंन कै होय ! तातैं तूं हे भव्य! आत्मा ही तैं केवलज्ञान स्वभाव श्रद्धान करहु। जो मोक्षका लाभ चाहै है तो अैसें जोगींद्रदेव कहै है, अर पूर्व जोगीहू कह्या है ॥ ३९ ॥

---

१. जइ : आ०।
२. णिम्मल : मि०।
३. छंडवि : मि०।
४. वि ववहार : मि०।
५. सामी : मि०।
६. ऐहउ : मि०।
७. भवपार : मि०।
८. ते . मि०।
९. भणेइ : मि०।
१०. जो : मि०।
११. इहि : मि०।
१२. जो : मि०।
१३. चाहहि : आ०।

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चोपई

को[1] सुसमाहि करउ को अंचउ, छोपु-अछोपु करिवि को वंचउ।
हलसहि[2] कलहु[3] केण समाणउ, जहिँ जहिँ जोवउ तहिँ[4] अप्पाणउ[5]॥४०॥

अर्थ—कौंन का समाधान करौं ? अर कौंनकूं पूजूं ? अर छिपाय-विना छिपाय कौंनकौं ठगौं ? अर उल्हास अर कलह कौंनसूं करूं ? सर्वं जीव चेतनां लक्षनपणां करि समान है। अर जहां-जहां देखूंहूं तहां-तहां आत्मा ही है ॥ ४० ॥

दोहा

ताम कुतित्थइँ परिभमइ धुत्तिम[6] ताम करेइ।
गुरुहु पसाएँ जाम णवि अप्पा-देउ[7] मुणेइ ॥४१॥

अर्थ—यह जीव जितनैं कुतीर्थंनिविषैं परिभ्रमण करै है, अर धूर्तताहू तितनैं ही करै है। जितनैंकूं गुरुके प्रसाद विनां देहविषैं देव जो निजात्मा देवताकूं नांहीं जाणैं है, तितनैं ही परिभ्रमण करै है ॥ ४१ ॥

दोहा

तित्थहिँ देवलि देउ णवि इम सुइकेवलि[8] वुत्तु।
देहादेवलु[9] देवु जिणु एहउ जाणि णिभंतु ॥ ४२ ॥

अर्थ—तीर्थं कहिए सिद्ध क्षेत्रादिक तीर्थंस्थान तिनविषैं अर देहुरा-विषैं देव जो आत्मा सो नांही है, अैसैं सास्त्र वा केवली कह्या है। अथवा श्रुतकेवली कह्या है। देहरूप देहुराविषैं जिनदेव है—या प्रकार भ्रांति रहित जांनिहु ॥ ४२ ॥

दोहा

देहा-देवलि[10] देउ जिणु जिणु[11] देवलिहिँ णिएइ।
हासउ महुपरि होइ[12] इहु सिद्धे[13] भिक्ख भमेइ ॥ ४३ ॥

---

१. का : मि०।
२. हलसह : मि०।
३. लहि : मि०।
४. तह : मि०।
५. अप्पालउ : मि०।
६. धूत्तिम : मि०।
७. (अप्पा) देव : मि०।
८. सुहकेवलि : मि०।
९. देहादेवल : मि०।
१०. (देहा) देवल : मि०।
११. जिण : मि०। जणु : आ०।
१२. पडिहाइ : आ०।
१३. सिद्ध : मि०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—देहरूप देहराविषैं जिनदेव है, अर जे जिन देहराविषैं प्राप्त करै है, अथवा नमस्कार करै है, सो यह मुख उपरि हास्य होय है। जैसैं सिद्ध होय भिक्षाकै निमित्त भ्रमण करै, तैसैं जांननां ॥ ४३ ॥

दोहा

मूढा देवलि[1] देवु[2] णवि णवि सिलि[3] लिप्पइ चित्ति[4] ।
देहा देवलि[5] देवु जिणु सो बुज्झइ[6] समचित्ति[7] ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे मूढ ! हे तत्व विवेक रहित ! देहुराविषैं देव नांही है। अर सिला लेप, चित्राम—इनिविषैंहू जिनदेव नांही है। (देहरूप देहराविषैं जिनदेव है, अैसें जो जानैं है) सो समभावी जीव है, सो जानैं है ॥ ४४ ॥

दोहा

तित्थइ देवलि[8] देवु[9] जिणु[10] सव्वु[11] वि कोइ भणेइ ।
देहा देवलि[12] जो मुणइ सो वुहु को वि हवेइ ॥ ४५ ॥

अर्थ—तीर्थविषैं देहुराविषैं जिनदेव है—अैसैं सर्व कोई कहै है। अर देह रूप देहुराविषैं जो जिनदेवकूं जाणैं है, सो वुधवांण पंडित विरले होइ है ॥ ४५ ॥

दोहा

जइ जर[13]-मरण करालियउ[14] तो[15] जिय[16]धम्म करेहि ।
धम्म-रसायणु[17] पियहि[18] तुहुं जिम अजरामर होहि[19] ॥ ४६ ॥

अर्थ—हे जीव ! हे भव्य ! जो जरा-मरण करि पीडित है तो जिन-भाषित धर्मकूं करि। धर्म रूप रसायण जो सिद्ध औषधि ताकूं पान करि। ज्यौं तू अजरामर देहि अविनाशी होइ ॥ ४६ ॥

१. देवल : मि० ।
२. देव : मि० । देउ : आ० ।
३. सलि : मि० ।
४. चित्तु : मि० ।
५. देवल : मि० ।
६. वुज्झहि : आ० ।
७. समचित्तु : मि० ।
८. देउलि : आ० ।
९. देउ : आ० ।
१०. जिण : मि० ।
११. सव्व : मि० ।
१२. देउलि : आ० ।
१३. जरा : मि० ।
१४. करालिउ : मि० ।
१५. तउ : मि० ।
१६. जिण : मि० ।
१७. रसायण : मि० ।
१८. पिय : मि० ।
१९. देहि : मि० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोरठा

धम्मु ण पढियइँ[1] होइ धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइँ[2]।
धम्मु ण मढिय-पएसि[3] धम्मु ण मत्था[4] लुंचियइँ[5] ॥ ४७ ॥

अर्थ—धर्म है सो पढ्यां नांही होइ। अर धर्म है सो पोथी वांचें नांही होइ। अर धर्म है सो पीछो धारे नांही होइ। अर धर्म मंढीविषैं प्रवेश कीयां नांही होइ। अर धर्म मुनि भेष धारें अर मस्तकविषैं लौंचादिक कीए नांही होइ। ए समस्त क्रिया परमार्थशून्यकै धर्म नांही करि सकै है। केवल आत्मशून्य की क्रिया कार्यकारी नांही ॥ ४७ ॥

आगैं औरहू कहै है—

दोहा

राय-रोस बे परहरिवि[6] जो अप्पाणि[7] वसेइ।
सो धम्मु वि जिण-उत्तियउ[8] जो पंचम गइ देइ[9] ॥ ४८ ॥

अर्थ—पूर्वैं कह्या तैसैं धर्म नांही होय तो धर्म कैसैं होइ है? ऐसैं पूछैं कहै है—जो रागद्वेष दोइ जो परित्याग करि अर जो आपके आत्म-ध्यानविषैं प्रवेश करै, सोइ धर्म जिन भगवाननैं कह्या है। सोइ धर्म पंचम गति जो मोक्ष ताकूं देवै है।

भावार्थ—रागद्वेष ही संसारका मूल कारण जांनि। यातैं रागद्वेष हेय जांनि त्यागनां ॥ ४८ ॥

दोहा

आउ गलइ णवि मणु गलइ णवि आसा हु गलेइ।
मोहु[10] फुरइ णवि अप्पहिउ इम संसार भमेइ ॥ ४९ ॥

अर्थ—आयु है सो गलै है, अर मन है सो चंचल होइ है, अर पंच-इंद्रियनिके विषयविषैं दोड़ै है। अर आसाहू नांही गलै है। अर मोह कर्म है सो स्फुरायमान होय है अर आत्महित नांही स्फुरायमान होय है। या प्रकार करि ही संसारमै भ्रमै है।

भावार्थ—या संसारविषैं पूर्वं पुन्यका उदय थकी मनुष्य भया सो संसारविषैं प्रमादी होय रह्या है। अर सावधान नांही होत है। हे

---

१. पढिया : मि०।
२. पिछयइ : मि०।
३. मढिये पेसि : मि०।
४. मिछा : मि०।
५. लुच्चियइ : मि०।
६. परहरइ : मि०।
७. अप्पान : मि०।
८. उतियो : मि०।
९. णेइ : आ०।
१०. मोह : मि०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मन ! तेरी मनुष्य आयु तो या प्रमाद थकी हो गलै है, नष्ट होय है। अर तेरा विषय-कषायनिविषैं अर पंच इंद्रियनिके विषयविषैं मन नांही गलै है। अर विषयनिकी चाहना रूप आशा नांही गलै। दिन-दिन प्रति आयु तो गलै है अर आशा वृद्धिकूं प्राप्त होय है। अर मोहनीय कर्मकी प्रकृति आपके उदय करि आत्मानैं मोही करै है। सावधान आत्महित नांही होनें दे है, याही कारणतै संसारविषैं जीव है सो भ्रमैं है ॥ ४९ ॥

दोहा

जेहउ मणु विसयहँ रमइ तिमु[1] जइ[2] अप्प मुणेइ।
जोइउ भणइ रे[3] जोइयहु[4] लहु णिव्वाणु[5] लहेइ ॥ ५० ॥

अर्थ—योगींद्रदेव कहै है—हे जीव ! जो मन चंचल पांच इंद्रियनिके विषयनिविषैं रमैं है, तैसें जो आत्मानैं जाणैं तो रे जोगी ! तेरे शीघ्र ही निर्वाणकी प्राप्ति होइ ॥ ५० ॥

दोहा

जेहउ जज्जरु[6] नरय-घरु तेहउ बुज्झि सरीरु[7]।
अप्पा भावहि[8] णिम्मलउ[9] लहु पावहि[10] भवतीरु[11] ॥ ५१ ॥

अर्थ—आचार्य शिष्यकूं संबोधै है जो शरीरविषैं आशक्तताकूं करै है, रे जीव ! यह शरीर जर्जरा नरक जो विष्टाका घड़ा ता समान तेरा शरीरकूं जांणि। अर आत्मा कर्मकलंक रहित, शुद्ध, निर्मल, कर्म कालिमा रहित, शुद्ध हंसरूप उज्जल परमात्माकूं ध्यावहु, तातैं शीघ्र ही संसारका पारकूं पावै ॥ ५१ ॥

दोहा

धंधइ[12] पडियउ[13] सयल जगि णवि अप्पा हु मुणंति।
तहिं[14] कारणि[15] ए जीव फुडु ण हु णिव्वाणु लहंति ॥ ५२ ॥

---

१. तिम : मि०।
२. जे : मि०।
३. हो : आ०।
४. जोइहु : मि०।
५. णिव्वणु : मि०।
६. जज्जर : मि०।
७. सरीर : मि०।
८. भावहु : मि०।
९. णिम्मलहु : मि०।
१०. पावइ : मि०।
११. भवतीर : मि०।
१२. धंधय : मि०।
१३. पडियो : मि०।
१४. तिहिं : मि०।
१५. कारण : मि०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—सकल संसारी जीव धंधा जो संसारके कारण स्त्री-सेवन, पुत्र विवाह, व्यापार, नोकरी, हाथकी मैनति अथवा द्वंद्व-दशा जो अज्ञान-दशा ताविषैं सकल जगत पड्या है। अर आत्मा तीन जगतका प्रभु इंद्र, धरनेंद्र, चक्रवर्ति करि पूज्य— ऐसा तीन लोकका ठाकुर निजात्माकूं नांही जाणै है, ताही कारण करि यह जोव निश्चय करि निर्वाणकूं नांही प्राप्त होय है ॥ ५२ ॥

दोहा

सत्थ[1] पढ़ंतह ते वि जड अप्पा जे ण मुणंति।
तहिँ[2] कारणि[3] ए जीव फुडु ण हु णिव्वाणु[4] लहंति ॥ ५३ ॥

अर्थ—यद्यपि शास्त्र पढ़ै है तो भी ते शास्त्र पढ़ने वाले जड़ ही है। काहैतैं जो आत्माकूं जे नांही जानैं है आत्मज्ञान वहिर्भूत शास्त्र पढै तो भी अज्ञानी ही जांननां। ताही कारणतैं ए जीव प्रगट निर्वाण जो कर्मनितैं छूटि कर्म रहित अविनाशी सुखकूं नांही प्राप्त होय है ॥ ५३ ॥

दोहा

मणु इंदिहि वि छोडियइ[5] बहु[6] पुच्छियइ[7] ण जोइ[8]।
रायहँ[9] पसरु[10] णिवारियइ[11] सहजहँ[12] उपजइ[13] सोइ ॥ ५४ ॥

अर्थ—मन है सो इंद्रियनितैं विछोहा कीजिए, हे योगिन ! बहुत लोकनिकूं मति पूछै। अर रागादिक भावनिका फैलाव मति होनें दे, सहज ही आत्मलाभ होयगा। ऐसी गुरूनिको प्रेरणा जांननी ॥ ५४ ॥

---

१. सत्थह : मि०।
२. तिहिं : मि०।
३. कारण : मि०।
४. णिव्वाण : मि०।
५. छोइयइ : मि०।
६ बुहु : आ०।
७. पुछियइ : मि०।
८. कोइ : आ०।
९. राय : मि०।
१०. पसर : मि०।
११. णवारियइ : मि०।
१२. सहज : आ०।
१३. उपज्जइ : आ०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

पुग्गलु अण्णु[1] जि अण्णु[2] जिउ अण्णु[3] वि सहु ववहारु[4] ।
चयहि वि पुग्गलु[5] गहहि[6] जिउ[7] लहु पावहि[8] भवपारु ।। ५५ ।।

अर्थ—अहो जीव ! पुद्‌गल अन्य है, जीव अन्य है। आत्मप्रदेश संघाततैं क्षीर-नीरकी नांई मिल्या है, परन्तु परमार्थ करि आत्मा तो चेतना लक्षण अन्य है, अर पुद्‌गल जड़ है। सोऊ स्वभाव करि अन्य अन्य है। पुद्‌गल द्रव्य स्कंध भेदतैं अन्य है। अर असंख्यात प्रदेशी आत्मा ज्ञायकस्वभाव यह जीव द्रव्य थकी न्यारा है। अनादिकालका कर्म अर पुद्‌गलसैं मिल्या हू अन्य ही है। अर अन्य सकल व्यवहार हू अन्य ही है, तिसही कारणतैं पुद्‌गल द्रव्यका संबंध त्याग करनां, हेय जांणि। अर जीवकौं उपादेय जांणि अंगीकार करणां, यही कारणतैं संसारका पार शीघ्र ही प्राप्त होयगा ।। ५५ ।।

दोहा

जे[9] णवि मण्णहिँ जीव फुडु जे[10] णवि जीव मुणंति ।
ते जिणणाहहँ उत्तिया णउ संसार मुचंति[11] ।। ५६ ।।

अर्थ—जे नास्तिक जीवकूं नांही मानैं है, पंचभूततैं जुदा नांही मानै है, अर जीव नांही जानैं है, सो जिन भगवान कह्या है कि ते जीव नास्तिक संसारतैं नांही छूटै है ।। ५६ ।।

दोहा

रयण दीउ[12] दिणयर दहिउ दुद्धु[13] घीउ[14] पासाणु[15] ।
सुण्णु रुप्प फलिहउ[16] अगणि[17] णव दिट्ठंता जाणु ।। ५७ ।।

---

१. अणु : मि० ।
२. अणु : मि० ।
३. अणु : मि० ।
४. विवहार : मि० ।
५. पुग्गल : मि० ।
६. गहइ : मि० ।
७. जीउ : मि० ।
८. पावहु : मि० ।
९. जी : मि० ।
१०. जो : मि० ।
११. मुंचंति : मि० ।
१२. दियउ : मि० ।
१३. दूध : मि० ।
१४. घीव : आ० ।
१५. पाहाणु : आ० ।
१६. सुण रूप फलिउ : मि० ।
सुण्णउ रूउ फलिहउ : आ० ।
१७. अगिणि : आ० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—रत्न, दीपक, सूर्य, दही-दूध-घ्रत, पाषाण, सोना, रूपा, ईसफाटिक, अग्नि—ए नव दृष्टांत करि जांननां; आत्माका विशेष आशय कुछ जाण्यां पढ्या नांही ॥ ५७ ॥

दोहा

देहादिउ[1] जो परु[2] मुणइ जेहउ सुण्णु[3] अयासु।
सो लहु पावहि बंभु[4] परु केवलु[5] करइ पयासु ॥ ५८ ॥

अर्थ—देहादिकनिकूं जो पर मानैं, जैसें जड़ सूनां आकाश ताकी नांई, ते जीव परमब्रह्म लोकालोक-व्यापी ज्ञान-स्वरूप साक्षात प्रत्यक्ष अनुभव करै हैं, केवलज्ञान करि प्रकाश करै हैं ॥ ५८ ॥

दोहा

जेहउ सुद्ध अयास[6] जिय[7] तेहउ अप्पा वुत्तु।
आयासु वि जडु[8] जाणि जिय अप्पा चेयणुवंतु[9] ॥ ५९ ॥

अर्थ—अहो जीव ! जैसें आकाश-द्रव्य शुद्ध अलेप आकाश है, तैसा हो एकोदेश आत्मा निर्लेप कह्या। हे ज़ीव ! आकाशकूं हू जड़ जांणि, अर आत्मा चेतनांवंत जांणि स्व-परप्रकाशक है ॥ ५९ ॥

दोहा

णासग्गिँ अब्भितरहँ जे जोवहिँ असरीरु[10]।
बाहुडि जम्मि[11] ण संभवहिँ[12] पिवहिँ ण जणणी-खीरु ॥ ६० ॥

अर्थ—हे आत्मन ! नाशाग्रदृष्टि करि अभ्यंतरविषैं आत्माकूं जो शरीर रहित देखै है, सो आत्मा वाहुडि जन्म नांही धारै है, अर माता का दूध नांही पीवै है ॥ ६० ॥

दोहा

असरीरु वि सुसरीरु[13] मुणि इहु[14] सरीरु जडु जाणि।
मिच्छा[15] मोहु[16] परिच्चयहि मुत्ति[17] नियंविणि[18] माणि ॥ ६१ ॥

---

१. देहादिक : मि० ।
२. पर : मि० ।
३. सुणहु : मि० ।
४. वंनु : मि० ।
५. केवल : मि० ।
६. आयास : मि० ।
७. जिआ : मि० ।
८. जड : मि० ।
९. वुत्तु : मि० ।
१०. असीरू : मि० ।
११. जम्म : मि० ।
१२. संभवइ : मि० ।
१३. सरीरू : मि० ।
१४. इफु : मि० ।
१५. मिछा : मि० ।
१६. सोहु : मि० ।
१७. मुत्तिय : मि० ।
१८. णियं वि ण : आ० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—जो शरीर रहित अमूर्तीक, असंख्यात प्रदेशी, परम चैतन्य, निज सुन्दर ज्ञानानन्द ज्ञानका पुंज, टंकोत्कीर्ण अैसा सुन्दर निज शरीरकूं जांणि; अर यह नर नारकादिक शरीरकूं जड़ जांणि; अर मिथ्यात्व प्रकृति करि परचय रूप मोहकूं परित्याग करि अर बाह्य स्त्री त्यागि, अर मुक्ति रूप नितंविनी जो स्त्री ताकूं भोगि ॥ ६१ ॥

दोहा

अप्पइँ[1] अप्पु मुणंतयहँ किं[2] णेहा फलु[3] होइ[4]।
केवलणाणु वि परिणवइ सासय सुक्खु[5] लहेइ ॥ ६२ ॥

अर्थ—आत्मानैं आत्म-स्वरूप करि अनुभवकर ताकै इहां कहा फल नांही होइ है ? केवलज्ञान रूप परिणामैं है अर सास्वता विनाश रहित नित्यानंदमय फल पावै है ॥ ६२ ॥

दोहा

जे परभाव चएवि[6] मुणि अप्पा[7] अप्प मुणंति।
केवलणाण सरूव लइ (लहि?)[8] ते संसारु[9] मुचंति ॥ ६३ ।

अर्थ—जो मुनि परभाव—जे रागद्वेष-काम-क्रोधादिक, मोहादिक विभावभाव तिनकूं त्यागि करि अर आत्माकौं आत्मा करि जानैं है, ते जीव केवलज्ञान-स्वरूप आत्मानैं प्राप्त होय, कृतार्थ होय संसारकूं छोड़ै है ॥ ६३ ॥

दोहा

धण्णा ते भयवंत बुह जे परभाव चयंति।
लोयालोय-पयासयरु अप्पा विमल मुणंति ॥ ६४ ॥

अर्थ--ते पुरुष ही धन्य हैं, अर ते ही भगवान हैं, अर ते ही बुध कहिए ज्ञानी हैं जे परभाव—रागद्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मान, माया, मोहादिक विभावभाव स्वभावतैं परान्मुख तिनि भावनिकूं त्यागै है। सो पुरुष लोकालोक का प्रकाश करनहारा आत्माकूं निर्मल जाणै है, सो ही धन्य है ॥ ६४ ॥

---

१. अप्पय : मि० ।
२. कि : मि० ।
३. फल : मि० ।
४. होय : मि० ।
५. सुक्ख : मि० ।
६. चएैव : मि० ।
७. अप्पैं : मि० ।
८. लियइ : मि० ।
९. संसार : मि० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

सागारु वि णागारु कु वि[1] जो अप्पाणि वसेइ।
सो पावइ लहु सिद्ध-सुहु[2] जिणवरु[3] एम भणेइ ॥ ६५ ॥

अर्थ—आगार—जो घर सहित श्रावक होहु अथवा अनागार—घर रहित मुनि होहु जो आत्माविषैं वसैं है, सो शीघ्र हो सिद्ध सुखकूं पावै है, जिन भगवान अैसैं कहै है ॥ ६५ ॥

दोहा

विरला जाणहिँ[4] तत्तु बुह[5] विरला णिसुणहिँ[6] तत्तु।
विरला झायहिँ तत्तु[7] जिय विरला धारहिँ तत्तु ॥ ६६ ॥

अर्थ—विरला ज्ञानी तत्व—जो निजात्म तत्व शुद्धात्मा, सिद्धात्मा सदृश तत्वज्ञान रूप आत्मानैं जानैं है, अर विरला तत्वकूं सुणैं है, अर विरला जीव तत्वकूं ध्यावै है. अर विरला तत्वार्थ श्रद्धान रूप तत्वकूं धारण करै है ॥ ६६ ॥

दोहा

इहु परियण ण हु महतणउ[8] इहु सुहु[9] दुक्खहँ हेउ।
इम चिंतंतहँ किं करइ लहु संसारहँ छेउ ॥ ६७ ॥

अर्थ—यह परिवार, स्त्री, पुत्र, धन आदिक मेरा नांहो, अर यह विषय-सुख है सो दुःखका कारण है, अैसैं चितवन करता कहा करै है ? शीघ्र ही संसारका छेद करै है—अनादिकालका विभाव परिणामका छेद करि आत्म-स्वभावकूं प्राप्त भया संसारका अभावकूं करै है ॥ ६७ ॥

दोहा

इंद-फणिंद-णरिंदय[10] वि जीवहँ सरणु[11] ण होंति।
असरणु[12] जाणिवि मुणि-धवल[13] अप्पा अप्प मुणंति ॥ ६८ ॥

---

१. फुणि : मि०।
२. सिद्धि-सुहु : आ०।
३. जिणवर : मि०।
४. जाणइ : मि०।
५. बुहु : मि०।
६. णिसुणहु : मि०।
७. तभु : मि०।
८. महतणो : मि०।
९. 'सुहु' पद छूटा है : मि०।
१०. फणेंद-णरेंदण : मि०।
११. सरण : मि०।
१२. असरण : मि०।
१३. धवला : आ०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—इंद्र, फणेंद्र, नरेंद्र—ए स्वर्ग लोकके, अर अधोलोकके, अर मध्यलोकके—तीन लोकके स्वामी हू अपनें कर्मफलकौं भोगताकौं सरण नांही होइ या जाणि (जे) मुनिप्रधान हैं ते आत्मा करि आत्माकूं अनुभवै हैं ॥ ६८ ॥

दोहा

इक्क उपज्जइ मरइ कु[1] वि सुहु-दुहु भुंजइ इक्कु[2] ।
णरयहँ जाइ वि इक्क जिउ[3] तह णिव्वाणहँ इक्कु[4] ॥ ६९ ॥

अर्थ—संसारविषैं परिभ्रमण करता जीव पर्यायनि करि अकेला ही उपजै है, अर अकेला ही मरै है, अर (अकेला ही) सुख-दु:खनिकूं भोगैं है, अर विभाव परिणामनि करि वांधे कर्म तिन करि अकेला ही नरक जाय है, तैसैं ही स्वभाव भावनि करि परणम्यां जीव निर्वाण भी अकेला ही जाय है ॥ ६९ ॥

दोहा

इक्कलउ[5] जाइ[6] जाइसिहि[7] तउ[8] परभाव चएहि ।
अप्पा झायहि णाणमउ[9] लहु सिव-मुक्ख लहेहि ॥ ७० ॥

अर्थ—अकेला जीव ही जन्मैं है, अकेला ही मरै है, तो परभाव—रागादिक तिनिनैं छोड़ि अर ज्ञानमई आत्मानैं ध्याय त्यौं शीघ्र ही मोक्ष सुखकौं प्राप्त होवै है ॥ ७० ॥

दोहा

जो पाउ वि सो पाउ भणि सव्वु इ को वि मुणेइ ।
जो पुण्णु[10] वि पाउ[11] वि भणइ सो बुहु[12] को वि हवेइ[13] ॥ ७१ ॥

अर्थ—जो पापनैं पाप सब ही कहै है, अर पुण्यनैं पुण्य कहै है, अर जे परमार्थ का वेत्ता पुण्यनैं भी पाप कहै है, काहैतैं जो पुण्य पाप दोऊ बन्ध रूप हैं, संसार का कारण हैं, तातैं सो कोइक ज्ञानी होइ है ॥ ७१ ॥

---

१. क्क : मि० ।
२. इक्क : मि० ।
३. जिय : मि० ।
४. इक्क : मि० ।
५. एक्कुलउ : आ० ।
६. जइ : आ० ।
७. जाइसहि : मि० ।
८. तो : आ० ।
९. णाणमलु : मि० ।
१०. पुण : मि० ।
११. पाव : मि० ।
१२. वुह : आ० ।
१३. हवइ : मि० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

जह लोहम्मिय[1] णियड बुह[2] तह सुण्णम्मिय जाणि।
जे[3] सुहु[4] असुह परिच्चयहिँ ते वि हवंति ण[5] णाणि ॥ ७२ ॥

अर्थ—भो बुधहो ! जैसें लोह की बेड़ो इच्छा गमन निषेधैं है, तैसें ही सोना की बेड़ोहू इच्छा गमन का निषेध करनें वाली जाननीं। तैसें ही शुभ अशुभ जांनि इनिका परिचय (संचय) करै है, ते ज्ञानी नांही होय है।

भावार्थ—जब लग पुण्य-पाप का संयोग है, तब लग संसार ही जांननां। अर पुण्य-पाप का संचय करै है, ते परमार्थ जो शुद्धनय ताको अपेक्षा ज्ञानी नांही जांननां ॥ ७२ ॥

दोहा

जइया मणु णिग्गंथु[6] जिय[7] तइया तुहुँ णिग्गंथु।
जइया तुहुँ[8] णिग्गंथु[9] जिय[10] तो लब्भइ सिवपंथु ॥ ७३ ॥

अर्थ—हे जोव ! जो मन निर्ग्रंथ है तो तू निर्ग्रंथ हो है, चोदा प्रकार का अभ्यंतर परिग्रह त्याग्या है तो तू हे जोव ! निर्ग्रंथ हो है। अर बाह्य दस प्रकार का परिग्रह त्याग्या है तो हे जीव ! तू निर्ग्रंथ ही है, तो शिव का मार्ग प्राप्त होगा ॥ ७३ ॥

दोहा

जं वडमज्झहँ बीउ[11] फुडु बीयहं वडु वि हु[12] जाणु।
तं देहहँ देउ मुणहि[13] जो तइलोय-पहाणु ॥ ७४ ॥

अर्थ—जैसें वडविषैं वोज प्रगट है, अर बोज-विषैं वड प्रगट है, तैसें ही अनुभवगम्य देहविषैं परमात्मा जांनि। कैसा है परमात्मा ? तीन लोकविषैं प्रधान है ॥ ७४ ॥

---

१. लोयम्मिय : मि०।
२. घुहा : मि०।
३. सो : मि०।
४. सुह : मि०।
५. हुं : आ०।
६. णिग्गंथ : मि०।
७. जिया : मि०।
८. तिहु : मि०।
९. णिग्गंथ : मि०।
१०. जिया : मि०।
११. बीज : मि०।
१२. ह : मि०।
१३. मुणइ : मि०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

जो[1] जिण सो हउँ सो हि जिउ[2] एहउ भाउ[3] णिभंतु ।
मोक्खहँ कारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥ ७५ ॥

अर्थ—जो जिन भगवान है सो ही मैं हूं, अर सो ही जीव है, द्रव्यार्थिकनय थकी जीव सिवाय अन्य दूजा द्रव्य नांही यह भाव भ्रांति रहित जांननां। मोक्षका कारण भो जोगीहो ! अन्य मंत्र-तंत्र नांही है ॥ ७५ ॥

दोहा

बे ते चउ पंच वि णवहँ सत्तहँ छह पंचाहँ ।
चउगुण सहियउ सो मुणह एहउ[4] लक्खण जाहँ ॥ ७६ ॥

अर्थ—दोय, तीन, च्यारि, अर पांच, अर नव, अर सात, अर छह, अर पांच, अर च्यारि अनंत चतुष्टय गुन सहित ए लक्षण जाके होय सो परमात्मा जाणि ॥ ७६ ॥

आगैं इनि भेदनिकूं विशेष करि दिखावै है—

दोहा

बे छंडिवि बे-गुण-सहिउ जो अप्पाणि[5] वसेइ[6] ।
जिणु[7] सामिउ[8] एमइं[9] भणइ लहु णिव्वाणु[10] लहेइ ॥ ७७ ॥

अर्थ—राग-द्वेष—इनि दोऊनिकूं तो छोड़ै, अर दोय गुण सहित—ज्ञानोपयोग-दर्शनोपयोग सहित अैसा जो पुरुष आत्माविषैं तिष्टै है, सो जिन स्वामी अैसैं कहै है, सो पुरुष शीघ्र ही निर्वाण पावै है ॥ ७७ ॥

दोहा

तिहिँ रहियउ[11] तिहिँ गुण[12]-सहिउ जो अप्पाणि[13] वसेइ ।
सो सासय सुह-भायणु[14] वि जिणवरु[15] एम भणेइ ॥ ७८ ॥

---

१. सो : मि० ।
२. सो जि हउँ : आ० ।
३. भाव : मि० ।
४. एयइँ : आ० ।
५. अप्पाण : मि० ।
६. विसेइ : मि० ।
७. जिण : मि० ।
८. सामी : मि० ।
९. ऐवं : मि० ।
१०. णिव्वाण : मि० ।
११. रहिउ : मि० ।
१२. तिगुण : मि० ।
१३. अप्पाण : मि० ।
१४. सुहु भायणु : मि० ।
१५. जिणवर : मि० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—अर तीन—राग, द्वेष, मोह इनि करि रहित, अर इनि तीन सहित रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय युक्त जो आत्माविषैं तिष्टै है, सो पुरुष सास्वता सुखका भाजन है, जिन भगवान या प्रकार कहै है ।। ७८ ।।

दोहा

चउ-कसाय-सण्णा-रहिउ चउ-गुण-सहियउ[1] वुत्तु ।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ जिम परु[2] होहिँ[3] पवित्तु[4] ।। ७९ ।।

अर्थ—अर च्यारि कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ इनि करि तो रहित, अर च्यारि संज्ञा—आहार, भय, मैथुन, परिग्रह रहित, अर च्यारि गुण – अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य इनि गुणनि सहित सो चैतन्यनिधान आत्मा तू जांनि ज्यौं तू परम पवित्र होइ ।।७९।।

दोहा

बे-पंचहँ रहियउ[5] मुणहि बे-पंचहँ संजुत्तु[6] ।
बे-पंचहँ जो[7] गुण-सहिउ[8] सो अप्पा णिरु वुत्तु[9] ।। ८० ।।

अर्थ—वे-पंच कहिए दश प्रकार परिग्रह रहित—क्षेत्र, हवेली, रुपया, महोर (मुहर), सोना, धन, धान्य, दासी, दास, रूईका वस्त्र —इनि दश प्रकारका परिग्रह रहित, अर दश प्रकार धर्म—उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संजम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य एह दशलक्षण-धर्म सहित सो आत्मा निश्चय करि कह्या ।। ८० ।।

दोहा

अप्पा दंसणु[10] णाणु[11] मुणि अप्पा चरणु[12] वियाणि ।
अप्पा संजमु[13] सील तउ अप्पा पच्चक्खाणि ।। ८१ ।।

अर्थ—आत्मा दर्शन-ज्ञानमय जाणि, अर आत्मा ही चारित्र जाणि, आत्मा ही संजम, शील, तप है, अर आत्मा ही प्रत्याख्यान है। इहां द्रव्यार्थिक नय करि गुण-गुणोके भेद नांही कह्या ।। ८१ ।।

---

१. सहिउ : मि० ।
२. पर : मि० ।
३ मोहि : मि० ।
४. पवत्तु : मि० ।
५. रहियो : मि० ।
६. संजुत्त : मि० ।
७. सो : मि० ।
८. सहियो : मि० ।
९. णर वुत्त : मि० ।
१०. दंसण : मि० ।
११. णाण : मि० ।
१२. चरण : मि० ।
१३. संजम : मि० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

जो परियाणइ[1] अप्प परु सो परु चयइ[2] णिभंतु ।
सो सण्णासु[3] मुणेहि[4] तुहुँ केवलणाणिं[5] वुत्तु[6] ।। ८२ ।।

अर्थ—जो शुद्ध आत्मा आत्मानैं अर परनैं जानैं है सो परनैं भ्रांति-रहित छोड़ै है। सो ही तू संन्यास जांणि, केवलज्ञानी अैसें कह्या है।

भावार्थ—जो आपनैं अर परनैं जाणैंगा तब आपकूं आप जाणैंगा, अर परकूं छोड़ैगा तब स्वभावका ग्रहण परभावका त्याग होगा, सो ही संन्यास जांणनां ।। ८२ ।।

दोहा

दंसणु[7] जं पिच्छियइ[8] बुह अप्पा विमल महंतु ।
पुणु पुणु[9] अप्पा भावियइ[10] सो चारित्त पवित्तु ।। ८३[11] ।।

अर्थ—दर्शन सो ही है जो पंडित विमल महंत आत्माकूं देखै। अर वार बार आत्माकी भावना करै सो ही पवित्र चारित्र जांनि ।। ८३ ।।

दोहा

रयणत्तय[12]-संजुत्त जिउ उत्तमु[13] तित्थय उत्तु[14] ।
मोक्खहँ कारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु ।। ८४[15] ।।

अर्थ—रत्नत्रय—जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इनि करि संयुक्त आत्मा ही तीर्थ कह्या, सो ही भो योगिन् ! मोक्ष का कारण है और दूसरा कोई मोक्ष का कारण मंत्र-तंत्र नांही है ।। ८४ ।।

दोहा

जहिँ अप्पा तहिँ सयलगुण केवलि एम भणंति ।
तिहिँ कारणएँ जीव[16] फुडु अप्पा विमलु[17] मुणंति ।। ८५ ।।

---

१. परिआणइ : मि० ।
२. पर चय : मि० ।
३. सणास : मि० ।
४. मुणे : मि० ।
५. केवलणाणी : मि० ।
६. वुतु : मि० ।
७. दंसण : मि० ।
८. पिछइ : मि० ।
९. पुण पुण : मि० ।
१०. भावियए : आ० ।
११. ८४ : आ० ।
१२. रयणतय : मि० ।
१३. उत्तिमु : मि० ।
१४. तित्थु पवित्तु : आ० ।
१५. ८३ : आ० ।
१६. जोइ : आ० ।
१७. विमल : मि० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—जहां आत्मा है तहां सकल गुण है केवली या प्रकार कहै है। तिहि कारण करि जीव है सो प्रगटपनैं निर्मल आत्मा का अनुभव करै है ॥ ८५ ॥

दोहा

इक्कलउ[1] इंदिय रहियउ[2] मन-वय-काय-ति-सुद्धि।
अप्पा अप्पु[3] मुणेहि[4] तुहुँ लहु पावहि[5] सिव-सुद्धि ॥ ८६ ॥

अर्थ—अकेला इंद्रियां रहित मन, वचन, काय—तीनौंको शुद्धता करि आत्माकूं आत्मा जांणि; तू शीघ्र ही मोक्षकी शुद्धताकूं पावै ॥८६॥

दोहा

जइ बद्धउ[6] मुक्कउ मुणहि तो बंधयहि णिभंतु।
सहज-सरूवइ[7] जइ रमहि[8] तो पावहि[9] सिव-संतु ॥ ८७ ॥

अर्थ—यद्यपि संसारावस्थाविषैं बंध-मोक्ष अवस्था है, परंतु निश्चय द्रव्यार्थिक(क)रि देखिए तो न तो आत्मा बंध युक्त है अर न मुक्त है, अर जो बंध-मुक्त रूप जांणै है तो भ्रांति रहित बंधकूं प्राप्त होय है। अर जो सहज स्वरूपविषैं रमैं तो स्वभाव रूप शिवस्थानकूं पावै है ॥ ८७ ॥

दोहा

सम्माइट्ठी जीव तुहुँ[10] दुग्गइ गमणु ण होइ।
जइ जाइ वि तो दोसु[11] णवि पुव्व-कियउ[12] खउ होइ[13] ॥ ८८ ॥

अर्थ—हे सम्यग्दृष्टी जीव ! तेरा दुर्गतिविषैं गमन नांही होय। अर जो कदाचित पूर्वकर्मकृत दोष करि दुर्गतिविषैं भी गमन होय तो दोष नांही, पूर्वकृत कर्मका क्षय होय है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन करि शुद्ध दुर्गतिनिविषैं नांही उपजै है, जो पूर्वैं बंध गति (आयु) का नांही कीया होइ तो नरक गति, तिर्यंच गति, नपुंसक गति, स्त्रीपंणा, खोटा कुल, अर अल्प आयु, अर दरिद्री—इत्यादिक

---

१. एक्कलउ : आ० ।
२. रहिउ : मि० ।
३. अप्प : मि० ।
४. मुणेइ : मि० ।
५ पावहु : मि० ।
६. वद्धो : मि० ।
७. सरूवई : मि० ।
८. रमइ : मि० ।
९. पावइ : मि० ।
१०. जीवडहँ : आ० ।
११. दोस : मि० ।
१२. पुव्वक्किउ : आ० ।
१३. खउगोइ : मि० ।
खवणेइ : आ० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्यायनिविषैं अव्रत सम्यग्दृष्टी हू नांही उपजै है, अर व्रतीका तो कहा कहनां ॥ ८८ ॥

दोहा

अप्प-सरूवइ[1] जो रमइ[2] छंडिवि[3] सहु ववहारु।
सो सम्माइट्ठी हवइ लहु पावइ[4] भवपारु॥ ८९ ॥

अर्थ—जो आत्मस्वरूपविषैं जो रमैं है समस्त व्यवहारकूं छोड़ि सो सम्यग्दृष्टी होय है, सो शीघ्र ही संसारका पारकूं प्राप्त होय है ॥ ८९ ॥

दोहा

अजरु अमरु[5] गुण-गण-णिलउ[6] जहिं[7] अप्पा थिरु ठाइ[8]।
सो कम्मेहिं[9] ण बंधियउ[10] संचिउ पुव्व विलाइ॥ ९०[11] ॥

अर्थ—जरा रहित, मरण रहित ज्ञानादिक गुण को निलय कहिए स्थानक अैसा जाकै आत्मा स्थिर होय ताकै नवीन कर्म नांही बंधै है अर पूर्वैं संचय कीए कर्म विलय जाय है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी रागद्वेष रहित है, उदयागत कर्मफलकूं भोगवै है, सुखविषैं तो रागी नांही, दुःखविषैं द्वेषी नांही, कर्मफलकूं जांनि समभावनि करि भोगवै है ॥ ९० ॥

दोहा

जो[12] सम्मत्त-पहाणु[13] बुहु[14] सो तइलोय-पहाणु।
केवलणाण वि लहु लहइ सासय-सुक्ख-णिहाणु॥ ९१[15] ॥

अर्थ— सम्यक्त्व है प्रधान जाकै सो ही ज्ञानी है, सो जीव तीन लोक-विषैं प्रधान है, (सो ही शीघ्र केवलज्ञानकूं प्राप्त करै है) अर सो ही सास्वत सुख-निधान होइ है ॥ ९१ ॥

---

१. सरूवहँ (सरूवइ) : आ० ।
२. जइ : मि० ।
(मि० प्रतिमें 'रमइ' पद छूटा है)
३. छंडवि : मि० ।
४. पावहु : मि० ।
५. अजर अमर : मि० ।
६. णिलहउ : मि० ।
७. जिहिं : मि० ।
८. थिर थाइ : मि० ।
९. कम्महिं : मि० ।
१०. ण वि वंधियउ ; मि० ।
११. ९१ : आ० ।
१२. सो : मि० ।
१३. समत-पहाण : मि० ।
सम्मत्त पहाण : आ० ।
१४. वुहु : मि० ।
१५. ९० : आ० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

जह सलिलेण ण लिप्पियइ[1] कमलणि-पत्त कया वि।
तह कम्मेहिँ[2] ण लिप्पियइ[3] जइ[4] रइ[5] अप्प-सहावि ॥ ९२ ॥

अर्थ—जैसें कमलणी का पत्र जल करि नांही लिप्त होइ है, तैसें ही जो जीव आत्म-स्वभावमैं रत रहै सो कर्म करि नांही लिपै है ॥ ९२ ॥

दोहा

जो सम-सुक्ख णिलीणु[6] बुहुं पुण पुण अप्पु[7] मुणेइ।
कम्मक्खउ करि सो वि[8] फुडु लहु णिव्वाणु[9] लहेइ ॥ ९३ ॥

अर्थ—जो ज्ञानी समभाव रूप सुख जो रागद्वेषरहित विषैं लीन होय है, वहुरि आत्मा का अनुभव करै है, सो पुरुष कर्म का क्षय करि शीघ्र ही निर्वाणकौं प्राप्त होय है ॥ ९३ ।

दोहा

पुरिसायार[10]-पमाणु जिय अप्पा एहु पवित्तु[11]।
जोइज्जइ गुण णिम्मलउ[12] णिम्मल-तेय-फुरंति[13] ॥ ९४ ॥

अर्थ—जो पुरुषाकार जो चरम शरीर-प्रमाण आत्मा यह पवित्र जानहु। अर निर्मल गुण रूप देखहु निर्मल तेज जामैं स्फुरायमान है ॥ ९४ ॥

दोहा

जो अप्पा सुद्ध मुणेइ[14] असुय[15]-सरीर-विभिण्णु[16]।
सो जाणइ सत्थइँ सयल[17] सासय-सुक्खहँ लीणु ॥ ९५ ॥

अर्थ—जो आत्मानैं अशुचि शरीरतैं भिन्न शुद्ध मानैं है सो पुरुष ही सकल शास्त्र जाणैं है, सास्वता सुखविषैं लीन होत है ॥ ९५ ॥

---

१. लिप्पइ : मि०।
२. कम्मेण : मि०।
३. लिप्पइ : मि०।
४. जह : मि०।
५. रहइ : मि०।
६. णिलीण : मि०।
७ अप्प : मि०।
८. सोउ : मि०।
९. णिव्वान : मि०।
१०. पुरसायार : मि०।
११. ऐहु पवितु : मि०।
१२. गुण-गण-णिलउ : आ०।
१३. फुरंतु : आ०।
१४. वि मुणइ : आ०।
१५. असुइ : आ०।
१६. विभणु : मि०।
१७. सत्थ सयलु : मि०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

जो णवि जाणइ[१] अप्पु[२] परु णवि परभाउ[३] चएइ[४] ।
सो जाणउ सत्थइँ सयल[५] ण हु सिव-सुक्ख लहेइ[६] ।। ९६ ।।

अर्थ—जे मूढ़ आत्मा—आतम-स्वरूप अर पर-स्वरूपकूं नांही जाणैं है, अर (पर) भाव—जे रागद्वेष विभाव भावकूं नांही त्यागै है, सो आत्मशून्य सकल शास्त्रनैं जाणता भी मोक्ष का सुखकौं नांही पावै है ।। ९६ ।।

दोहा

वज्जिय सयल वियप्पयहँ[७] परम-समाहि लहंति ।
जं विदहिँ[८] साणंद फुडु[९] सो सिव-सुक्ख भणंति ।। ९७ ।।

अर्थ—जे पुरुष सकल विकल्प-जाल तिननैं वर्जि करि अर परम समाधिनैं प्राप्त होइ हैं, सो अपना आनन्द सुखकूं प्रगट जाणै है। सो ही सुख मोक्षका कहै है ।। ९७ ।।

दोहा

जो पिंडत्थु[१०] पयत्थु[११] बुह रूवत्थु वि जिण उत्तु ।
रूवातीतु[१२] मुणेहि[१३] लहु जिम परु[१४] होहि पवित्तु ।। ९८ ।।

अर्थ—हे ज्ञानी ! जो जिन भगवान् पिंडस्थ ध्यान, पदस्थ ध्यान, रूपातीत ध्यान कहै है, सो हू शीघ्र ही जांननां जोग्य है, त्यौ परम पवित्र होय है ।। ९८ ।।

दोहा

सव्वे जीवा णाणमया जो[१५] समभाव मुणेइ ।
सो सामायउ जाणि फुडु जिणवर एम भणेइ ।। ९९ ।।

अर्थ—सर्व जीव ज्ञानमय हैं, चेतना लक्षण हेतु है। यातैं समभाव

---

१. जाणई : मि० ।
२. अप्प : मि० ।
३. परभाव : मि० ।
४. चएवि : मि० ।
५. सछ सयलु : मि० ।
६. लहेवि : मि०
७. वियप्पइँ : आ० ।
८. वेददि : मि० ।
९. साणंदु क वि : आ० ।
१०. पिंडत्थ : मि० ।
११. पयत्थ : मि० ।
१२. रूवातीत : मि० ।
१३. मुणेहु : मि० ।
१४. पर : मि० ।
१५. जे : मि० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाणैं है सो ही सामायिक प्रगट जांनि भगवान जिनवर केवली या प्रकार कहै है ॥ ९९ ॥

दोहा

राय रोस बे परिहरिवि[1] जो समभाउ[2] मुणेइ[3] ।
सो सामाइउ[4] जाणि फुडु केवलि एम भणेइ[5] ॥ १०० ॥

अर्थ—जो पुरुष राग अर रोस—इनि दोयका परित्याग करि जो समभाव अनुभवै है, सो सामायिकचारित्र प्रगटपनें जांनि, केवलज्ञानी असैं कहै है ॥ १०० ॥

दोहा

हिंसादिउ[6] परिहारु[7] करि जो अप्पा हु ठवेइ ।
सो विियऊ[8] चारित्तु[9] मुणि जो पंचम-गइ णेइ[10] ॥ १०१ ॥

अर्थ—हिंसादिकनिका परिहार जो त्यागकरि, अर जो आत्माविषैं उपयोग स्थापैं, सो दूसरा छेदोपस्थापना-चारित्र जांणनां, जो पंचम गति जो मोक्षकूं प्राप्त करै ॥ १०१ ॥

दोहा

मिच्छादिउ[11] जो परिहरणु सम्मद्दंसण-सुद्धि[12] ।
सो परिहार-विसुद्धि मुणि लहु पावहि सिवसिद्धि[13] ॥ १०२ ॥

अर्थ—मिथ्यात्वादिक जो परित्याग करि सम्यग्दर्शनकी शुद्धता सो परिहारविशुद्धि जाणि, सो शीघ्र ही मोक्षकी सुधिकौं (सिद्धिकौं) पावै है ॥ १०२ ॥

दोहा

सुहुमहँ[14] लोहहँ जो विलउ सुहुमु हवे[15] परिणामु[16] ।
सो सुहुमु वि चारित्त[17] मुणि सो सासय-सुह-धामु[18] ॥ १०३ ॥

---

१. पहरवि : मि० ।
२. समभाव : मि० ।
३. मुणंति : मि० ।
४. सामाइय : मि० ।
५. भणंति : मि० ।
६. हिंसादिक : मि० ।
७. परिहार : मि० ।
८. विउ : मि० ।
९. चारित्त : मि० ।
१०. पंचम गनेई : मि० ।
११. मिछादिक : मि० ।
१२. सम्मं दंसण-बुद्धि : मि० ।
१३. सिवसुद्धि : मि० ।
१४. सुहम : मि० ।
१५. जो सुहुमु वि : आ० ।
१६. परिणाम : मि० ।
१७. सुहम चरित्त : मि० ।
१८. धाम : मि० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ —सूक्ष्म लोभका जो नाश होनां, अर परिणाम सूक्ष्म होनां, सो सूक्ष्मचारित्र जांणि, सो ही सास्वता सुखका मंदिर जाननां ॥ १०३ ॥

दोहा

अरिहंतु वि सो सिद्धु[1] फुडु सो आयरिउ वियाणि ।
सो उवझायउ[2] सो जि[3] मुणि णिच्छइं[4] अप्पा जाणि ॥ १०४ ॥

अर्थ—अरिहंत, सो ही सिद्ध, सो ही आचार्य, सो ही उपाध्याय अर सो ही मुनि— ए पंच परमेष्ठी पद हैं, सो व्यवहारनयकरि कहनां है, निश्चय (नय) करि आतमा ही जानौं ॥ १०४ ॥

दोहा

सो सिउ संकरु[5] विण्हु सो सो[6] रुद्द वि सो बुद्धु ।
सो जिणु ईसरु[7] बंभु सो सो अणंतु फुडु सिद्धु ॥ १०५ ॥

अर्थ— सो ही आतमा शिव है कर्म रूप उपद्रवके नाशतै, अर सो ही आतमा शंकर है सकल जीवनिके सुखकारी पणांतैं, अर सो ही आतमा विष्णु है समस्त जगतविषैं व्यापक पणांतैं. (अर सो ही आतमा रुद्र है,) अर सो ही बुद्ध है ज्ञान स्वरूप पणां थकी, सो ही जिन भगवान् है काहै तैं ? कर्म जे रागद्वेषादिक अठारा दोष रहित पणांतैं, अर सो ही ईश्वर है त्रैलोक्यका प्रभुपणां थकी, अर आतमा ही ब्रह्मा है, अर सो ही अनंत-अक्षय है, सिद्ध स्वरूप आतमा ही है ॥ १०५ ॥

दोहा

एव हि[8] लक्खण लक्खियउ जो परु णिक्कलु[9] देउ ।
देहहँ मज्झहिँ[10] सो वसइ तासु ण विज्जइ भेउ ॥ १०६ ॥

अर्थ—इनि लक्षणनि करि चिह्नित जो परमातमा शरीर रहित देव है सो देह कै मध्य बसै है. तिसविषैं दूसरा भेद नांही विद्यमान है ॥ १०६ ॥

---

१. सिद्ध : मि० ।
२. उज्झावो : मि० ।
३. ज : मि० ।
४. णिछय : मि० ।
५. संकर : मि० ।
६. 'सो' पद छूटा है : मि० ।
७. जिण ईसर : मि० ।
८. ऐहिय : मि० ।
९. णिक्कल : मि० ।
१०. मज्झहं : मि० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

जे सिद्धा जे सिज्झहिहिँ[1] जे सिज्झहिँ जिण उत्तु[2]।
अप्पा-दंसणिँ[3] ते वि फुडु एहउ[4] जाणि णिभंतु[5] ॥ १०७ ॥

अर्थ—जे सिद्ध भए, अर जे सिद्ध होयगे, अर जे सिद्ध होहै ते जिन कह्या है। ते ही आत्माका ही दर्शन है, ए हो प्रगट भ्रांतिरहित जाणहु ॥ १०७ ॥

दोहा

संसारहँ भयभीयएण[6] जोगिचंद-मुणिएण।
अप्पा संबोहण कया दोहा इक्क-मणेण ॥ १०८ ॥

अर्थ—संसारको जो भय जामण-मरण तातैं भयवान अैसा जो जोगि मुनिचंद्र कहिए जोगींद्रदेव मुनि हूं, सो आत्मानैं संबोध वाकै अर्थि ए दोहा एक सो आठ कीया, अैसा जांननां ॥ १०८ ॥

इति श्री योगींद्रदेव विरचित दोहा सूत्र की
वचनिका समाप्ता।

अथ वचनिका बननेका संबंध लिख्यते

दोहा

मंगल मूरति कौ रटौं, वाणी पद करि ध्यान।
वणी वचनिका जा विधी सो हो करूं बखान ॥ १ ॥

शार्दूल विक्रीडित छंद

पून्यां सैर समीप कोश पनरा फलटनपुरी है बसो,
नाना देशते आय वस्तु बिकती मनभावती है जसी।
तांहां श्रावक धर्मरूप रहता शोभा कहा तक करै,
नाना मंदिर चैतयालय सजैं देखें हो मनकूं हरै ॥ २ ॥

मालिनी छंद

बुध फलटनवासी श्रावकी धर्म राशी,
हुमड वयक जाये दूलिचंदाभिधाए।
जनम बिरमचारी याचना नैव कारी,
जिन भऊन वरी है तोर्थ यात्रा करी है ॥ ३ ॥

---

१. सिज्झसिहि : मि० ।
२. उतु : मि० ।
३. अप्पा-दंसण : मि० ।
४. ऐहो : मि० ।
५. णिभतु : मि० ।
६. भयभीयहं : मि० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिखरिणी छंद

गृहत्यागी नहिं किछुक द्रव्यार्जन करै,
अपाने जीवानें असन कर जावै पर घरैं।
घनें देशां देशां फिरत फिर आए अवसरैं,
लहै नाना मानादिक सहित विद्वज्जन वरै ॥ ४ ॥

मदलेखा

इन्के मित्र सहाई हीराचन्दजि भाई।
साधर्मा कुल जाई विद्या भोत सिखाई ॥ ५ ॥

भुजंगप्रयात छंद

वहांसूं लि आए इनै भागचंज्जी,
तथा सेठ वंडी किसीतूरचंज्जी।
बहू शास्त्रनामी बहू तीर्थगामी,
दुई धर्मपालो दुई शोलशामी ॥ ६ ॥

देवलिया परतापहिगढ्ढ,
जिनमंदिर ता बहुत ही बढ्ढ।
तहां दुलीचंद आए राज,
मंदिर की परतिष्टा काज ॥ ७ ॥

सोरठा

फतेचंद कुसला व्हांसैं ल्याए सेठ जी।
परतिष्टा करला मंदिर इंदौर की ॥ ८ ॥

दोहा

मूलचंदजि नेमीचंद सेठजि ल्या ले जाय।
व्हांसैं भी अजमेरकूं रहै किछुक दिन पाय ॥ ९ ॥

भाषा छंद

गुणखांनि चतुर सुजांनि सुंदर वांनि जिनमत मानिजू,
धनदांनि गत-अभिमांनि धर्म रसानि पूरण ज्ञानि जू।
मदमंद भाग विलंद करुणा कंद मूलइचंद जी,
जिन वंद पदम करंद राज जिनंद नेमीचंद जी ॥ १० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुंडलिया

जैंपुर मैं ल्याये पछै सो हो सेठ सुजांन,
चैत्यालय मंदिर घनें तहां धर्म को आंनि।
तहां धर्म की आंनि शास्त्र के संघ विराजै,
भाई पण्डित ठांनि धर्म की भरै समाजै।
धर्मात्म श्रावकांहि श्रावकनी भजै जिनैं गुर,
जन्म अवर्था जाय ताहि नहिं देख्यो जैंपुर॥ ११॥

छंद

रहत जैन गण चैन रैंन दिन बैंन सुधारत,
करत नैंन जिन अैन मैं न जु पलैं न विसारत।
जिन मंदिर चित राम काम हाटक मणि सोहै,
देखत ही गंधर्व सर्व मुनिगन मन मोहै।
घन वाग जाग लागत सजै गिरि किन्नर चहुं ओर[1] वन।
है रामसिंह जय नग्र पर अग्र नरपति उग्र धन॥ १२॥

द्रुतविलंवित

प्रथम आय रहै दुलिचंद धीचंद दिवाणजि का मंदिर विषै।
तदनु तेरह पंथिन का वड़े जिन निवास रहे सुख चैनसैं॥ १३॥

वहुरि वास करायिहु सज्जनैं,
अमरचंद दिवाणक पौत्र जो।
उदयलाल जिनालय आपनें,
विनयपाल विशाल कला मने॥ १४॥

स्रग्धरा

तत्पश्चात्मारादा का प्रवर वर मती बाबूजी दुलिचंज्जी
कीया भण्डार च्यारूं जिनमत अनुयोग ग्रंथ सारे रखाये
दूरा देशांतरातैं वहु धन व्ययतैं पुस्तकां ज्यौ मगाये
ते ही सारे लिखाए निज वित अयुंता खर्चिकैं ज्यौ सुधाए॥ १५॥

दोहा

तिनका जो संबंध मैं चौधरि पन्नालाल।
श्रावक कुल विख्यात है पांडचा खंडिलावाल॥ १६॥

---

१. मूलप्रति 'मि०' में 'औौर' पाठ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शार्दूल युग्मं

झूथारामजि चौधरी गुणि वरी जिन्के सजे पुत्रह जो
छाजूलालजि पोपल्या अरू तथा दोसो नथूलालजी
डेडा का वसती सदासुख जिजो जो कासलीवाल है
इन्की संगति पायकैं गुण कला संयुक्त विद्या पढ़ी ।। १७ ।।

व्याकर्णादिक समस्त शास्त्र जिनकै बोधावलो की जुहै,
पन्नालाल जु चौधरी जयपुरें अभ्यास विद्याकरैं ।
छाजूलालजि आदि तो समय पां पञ्चत्वकूं प्राप्त हैं,
पश्चाद्धर्मं रुची भई जिन कृपा भई दुलीचंद कै ।। १८ ।।

इन्की सर्व सहायसैं वचनिका वाकी रही ही किज्यौ
सारी संस्कृत ग्रंथ की अरु तथा ज्यौ प्राकृतो मै रही
केई ग्रंथनि की वणी वचनिका भाषामई देश की
पन्नालाल जु चौधरी विरचि जो कारक दुलीचंद जी ।। १९ ।।

संवत्सर विक्रम तणौं उगणीसै बत्तीस ।
सावण सुदि एकादशी ता दिन पूर्ण करीस ।। २० ।।

इति संबंध संपूर्णम्

दोहा

जो प्रत देखी सो लिखी कर वहु चित्त विचार ।
भूल चूक जंह जानियौ लोजौ तहां सम्हार ।। १ ।।

भगन प्रष्टि ग्रीवा रुकट दिष्ट अधोमुख होंइ ।
कष्ट कष्ट करि यौ लिखी जतन राखि जौ लोइ ।। २ ।।

संवतसर उंनइससै पुन इकतालीस जान ।
पौष सुदि जौ अस्टमी पूरन भई प्रमान ।। ३ ।।

लिखतं नाथूराम डेवौडीया परवार की श्री बड़े मंदिर मिरजापुर के लानैं लिखी ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमद् योगीन्दुदेव-विरचित

योगसार

हिन्दी अनुवाद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्मल ध्यानमें स्थित होकर कर्मरूपी कलङ्कको नष्टकर आत्म-स्वरूपको जिन्होंने प्राप्तकर लिया है, उन परमात्मा (सिद्ध भगवान्) को नमस्कार करके चार घातिया कर्मोंका नाशकर अनन्त-चतुष्टयको प्राप्त करने वाले अर्हन्त भगवान्के चरणोंमें नमस्कारकर अभीष्ट काव्य (योगसार) को कहता हूँ ॥ १-२ ॥

संसारसे भयभीत और मोक्षकी इच्छाके कारण आत्मा (जीव) के सम्बोधन अथवा आत्म-सम्बोधनके निमित्त एकाग्रचित्त होकर दोहा कहूँगा ॥ ३ ॥

क्योंकि हे जीव ! काल अनन्त है और यह भवसागर भी अनन्त है, किन्तु मिथ्यादर्शन और मोहके कारण कभी भी सुख प्राप्त नहीं हुआ, अपितु दुःख ही पाया है ॥ ४ ॥

हे जीव ! यदि चतुर्गति गमनके दुःखोंसे भयभीत है तो पर-पदार्थों-को त्यागकर निर्मल आत्माका ध्यानकर, जिससे मोक्ष-सुख प्राप्त हो सके ॥ ५ ॥

परमात्मा, अन्तरात्मा और बहिरात्माके भेदसे आत्माके तीन प्रकार जानकर बहिरात्माका त्याग करो और अन्तरात्मा सहित परमात्माका ध्यान करो ॥ ६ ॥

मिथ्यादर्शन और मोहके कारण पर-पदार्थों और आत्माको जो भिन्न-भिन्न नहीं मानता है, उसे भगवान् जिनेन्द्रदेवने बहिरात्मा कहा है और वह बहिरात्मा चतुर्गति रूप संसारमें भ्रमण करता है ॥ ७ ॥

जो आत्मा और पर-पदार्थोंको भिन्न-भिन्न जानता है और परभाव-परपदार्थोंको त्यागता है, उसे पण्डित आत्मा (उत्कृष्ट आत्मा) जानो, वह पण्डित आत्मा संसारसे छुटकारा पा जाता है ॥ ८ ॥

जो निर्मल, निष्कलुष, शुद्ध, जिन (कर्मरूपी बैरीको जीतने वाला), विष्णु (ज्ञानमय होनेके कारण जगत्में व्याप्त), बुद्ध (परकी सहायता रहित केवलज्ञानका धारक), शिव (सदा कल्याणकारी) और शान्त (अथवा सन्त अर्थात् सदाकाल विद्यमान) है; उसे जिनेन्द्र भगवान्ने परमात्मा कहा है, ऐसा भ्रान्ति रहित होकर जानो ॥ ९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देहादिक जो परपदार्थ कहे गये हैं, उन्हें जो आत्मा जानता (मानता) है, उसे जिनेन्द्र भगवान्‌ने बहिरात्मा कहा है और वह बहिरात्मा संसार-सागरमें भ्रमण करता है ॥ १० ॥

देहादिक जो परपदार्थ कहे गये हैं, वे आत्मा (अर्थात् आत्म-स्वरूप) नहीं हैं, ऐसा जानकर हे जीव तूँ आत्माको आत्मा जान ॥११॥

यदि आत्माको आत्मा जानता है तो निर्वाणको प्राप्त करेगा और यदि परको (परपदार्थोंको) आत्मा जानता है तो तूं संसारमें भ्रमण करेगा ॥ १२ ॥

जो इच्छा रहित तप करता है और आत्माको आत्मा जानता है वह तो शीघ्र ही परमगति (निर्वाण) को प्राप्त होता है और फिर संसारमें नहीं आता है ॥ १३ ॥

(विभाव रूप) परिणामसे बन्ध कहा है और (स्वभाव रूप) परिणामसे मोक्ष। इस प्रकार समझकर हे जीव ! तूं निश्चयनयसे उन भावोंको जान ॥ १४ ॥

अथवा आत्माको जानता नहीं है और समस्त पुण्य-कार्योंको करता है तो वह सिद्धि-(मोक्ष-) सुखको प्राप्त नहीं कर सकता है और पुनः पुनः संसारमें परिभ्रमण करता है ॥ १५ ॥

एक मात्र आत्माका दर्शन (आत्मदर्शन) ही श्रेष्ठ है, आत्माके दर्शन बिना अन्य कुछ भी नहीं है। अतः हे योगी ! निश्चयसे मोक्षका कारण इन्हें ही जान ॥ १६ ॥

मार्गणा और गुणस्थान व्यवहारनयसे कहे गये हैं। निश्चयनयसे आत्माको जानो, जिससे परमेष्ठी पदकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥

घरके व्यापारमें लगा हुआ जो हेय और उपादेयको जानता है और प्रतिदिन जिनेन्द्रदेवका ध्यान करता है, वह शीघ्र ही निर्वाणको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

भगवान् जिनेन्द्रदेवका स्मरण करो, चिन्तन करो और शुद्ध मनसे उन्हींका ध्यान करो। उन भगवान् का ध्यान करते हुये एक क्षणमें परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है ॥ १९ ॥

शुद्धात्मा और जिनेन्द्रदेवमें कुछ भी भेद मत मानो। हे योगी ! मोक्षका कारण निश्चयसे इसे ही जान ॥ २० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो जिनेन्द्रदेव हैं, सो आत्मा है, यह सिद्धान्तका सार है, ऐसा जानकर हे योगी ! मायाचारका त्याग कर ॥ २१ ॥

जो परमात्मा है, सो मैं हूँ और जो मैं हूँ, सो परमात्मा है, ऐसा जानकर हे योगी ! अन्य विकल्प मत कर ॥ २२ ॥

यह आत्मा शुद्ध प्रदेशोंसे पूरित लोकाकाश प्रमाण है, उस आत्माको जो निरन्तर जानता है, वह शीघ्र ही निर्वाणको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

उस आत्माको निश्चयसे तो लोक-प्रमाण जानो और व्यवहारसे तत्-तत् शरीर-प्रमाण, ऐसा जो आत्माका स्वभाव जानता है, वह संसारका शीघ्र ही अन्त करता है ॥ २४ ॥

यह जीव अनन्तकालसे चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करता रहा है, किन्तु सम्यक्त्वको प्राप्त नहीं किया है, ऐसा निश्चयसे जानो ॥ २५ ॥

जो मुक्ति प्राप्त करना चाहते हो तो शुद्ध, सचेतन, बुद्ध, जिन और केवलज्ञान स्वभाव रूप उस आत्माको निरन्तर जानो ॥ २६ ॥

हे जीव ! जब तक तूँ निर्मल आत्म-स्वभावकी भावना नहीं करता है, तब तक तूँ मुक्तिपथको प्राप्त नहीं कर सकता है, जहाँ तेरी इच्छा हो, वहाँ जा ॥ २७ ॥

जो तीनों लोकोंमें ध्यान करने योग्य जिनेन्द्र भगवान् हैं, वही आत्मा है, ऐसा निश्चयसे कहा गया है, इसमें किसी प्रकार की भ्रान्ति नहीं है ॥ २८ ॥

जब तक एक शुद्ध स्वभाव रूप पवित्र परमात्माको नहीं जानता है, तब तक मूर्ख (मिथ्यादृष्टि) के व्रत, तप, संयम और मूलगुणोंको मोक्ष का कारण नहीं कहा जा सकता है ॥ २९ ॥

व्रत और संयमसे युक्त जो (जीव) निर्मल आत्माको जानता है; वह शीघ्र ही सिद्धि-सुखको प्राप्त करता है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है ॥ ३० ॥

हे जीव ! जब तक तूँ एक शुद्ध स्वभाव रूप पवित्र परमात्माको नहीं जानता है, तब तक व्रत, तप, संयम और शील—ये सब क्रियायें व्यर्थ हैं ॥ ३१ ॥

पुण्यसे जीव स्वर्ग प्राप्त करता है और पापसे नरकमें जाता है तथा जो पुण्य और पाप—इन दो को छोड़कर आत्माको जानता है, वह मोक्षको प्राप्त करता है ॥ ३२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे जीव ! व्रत, तप, संयम और शील—ये सब व्यवहारनयसे कहे गये हैं, मोक्षका कारण तो एक निश्चयनय है और वही तीनों लोकोंमें सारभूत है ॥ ३३ ॥

जो जीव आत्माको आत्मभावसे जानता है और परभाव (पर-पदार्थों) का त्याग करता है, वह मोक्षनगरको प्राप्त करता है, ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ ३४ ॥

जिनेन्द्रदेवने जो छह द्रव्य, नव पदार्थ और (सप्त) तत्त्व कहे हैं, वे व्यवहारनयसे कहे हैं, उन्हें प्रयत्नपूर्वक जानो ॥ ३५ ॥

ऊपर कहे गये समस्त पदार्थ अचेतन हैं, उनमें एकमात्र सचेतन (आत्मा) सारभूत है, जिसको जानकर परम मुनि शीघ्र ही भवसागरसे पार हो जाता है ॥ ३६ ॥

समस्त व्यवहारको त्यागकर जो निर्मल आत्मा है, उसे जानो। इससे शीघ्र ही भवसागरसे पार हो जायेगा, ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ ३७ ॥

हे योगी ! जो जीव और अजीवके भेदको जानता हैं, वही मोक्ष (मुक्ति प्राप्ति)के कारणको जानता है, ऐसा योगियोंने कहा है ॥ ३८ ॥

हे योगी ! यदि तुम मुक्ति लाभ चाहते हो तो जो केवलज्ञान स्वभाव रूप आत्मा है, उसे जीव जानो, ऐसा योगियों ने कहा है ॥ ३९ ॥

कौन समाधि (समाधान) करे, कौन पूजे और कौन छिपाकर अथवा विना छिपाकर छल कपट करे ? कौन किसके साथ हर्ष (मैत्री) और कलह करे। क्योंकि सभी समान हैं। जहाँ जहाँ देखो, वहीं आत्मा दृष्टिगोचर होता है ॥ ४० ॥

यह जीव तभी तक कुतीर्थोंमें परिभ्रमण करता है और तभी तक धूर्तता करता है, जब तक गुरुके प्रसादसे आत्मदेवको नहीं जानता है ॥ ४१ ॥

तीर्थों और देवालयों (मन्दिरों) में देव (परमात्मा) नहीं है, ऐसा श्रुतकेवली (अथवा शास्त्र और केवली) ने कहा है। जिनदेव देह रूप देवालयमें विद्यमान हैं, ऐसा भ्रान्ति रहित जानो ॥ ४२ ॥

देह रूप देवालयमें जिनदेव हैं, देवालयोंमें जिनदेवको देखना वैसे ही मुँह पर हँसी उड़ाना है, जैसे सिद्धावस्थाको प्राप्त हो जाने पर भिक्षा (कवलाहार) के निमित्त भ्रमण करना ॥ ४३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे मूढ़ ! देवालयमें देव नहीं हैं और न ही शिला, लेप अथवा चित्र में हैं। जिनदेव तो देह रूप देवालयमें हैं, उसे समचित्त व्यक्ति जानता है ॥ ४४ ॥

जिनदेव तीर्थों, देवालयोंमें हैं, ऐसा तो सभी लोग कहते हैं, किन्तु देह रूप देवालयमें जिनदेव हैं, ऐसा कोई बिरला पण्डित (ज्ञानी) ही जानता है ॥ ४५ ॥

हे जीव ! यदि तूँ जरा-मरणसे भयभीत है तो तूँ धर्मंकर, धर्मरूप रसायन (औषधि) का पान कर, जिससे तूँ अजर-अमर हो सके ॥ ४६ ॥

धर्मं, न पढ़नेसे होता है और न पोथी (शास्त्र , अथवा पिच्छि से । मठमें प्रवेश करनेसे भी धर्मं नहीं होता है और न केश-लुञ्चनसे धर्म होता है ॥ ४७ ॥

राग और द्वेष—इन दो को त्यागकर जो आत्मामें निवास करता है, उसीको जिनेन्द्रदेवने धर्मं कहा है। वह धर्मं पञ्चम गति (मोक्ष) को देता है ॥ ४८ ॥

आयु गल जाती है, किन्तु न तो मन गलता है और न ही आशा गलती है। मोह स्फुरायमान होता है, किन्तु आत्महित नहीं। इस प्रकार संसारमें जीव भ्रमण करता है ॥ ४९ ॥

जिस प्रकार मन विषयोंमें रमण करता है, उसी प्रकार यदि आत्मा को जानता है अर्थात् आत्मामें रमण करता है, तो हे योगी जनों ! शीघ्र ही निर्वाण हो जाय— ऐसा योगी कहते हैं ॥ ५० ॥

हे जीव ! जिस प्रकार जर्जरित नरकवास है, उसी प्रकार इस शरीर को समझ और निर्मल आत्माका ध्यान कर, शीघ्र ही संसार-सागरसे पार हो जायेगा ॥ ५१ ॥

सम्पूर्ण लोग संसारमें अपने-अपने धन्धे . व्यापार—लोक व्यवहार) में लगे हैं और निश्चयनयसे आत्माको नहीं जानते हैं, निश्चयसे इसी कारणसे जीव निर्वाणको प्राप्त नहीं करते हैं—यह स्पष्ट है ॥ ५२ ॥

जो आत्माको नहीं जानते हैं, वे शास्त्र पढ़ते हुये भी जड़ (मूर्खं) हैं। निश्चयसे इसी कारण ये जीव निर्वाणको प्राप्त नहीं करते हैं—यह स्पष्ट है ॥ ५३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह जीव मन और इन्द्रियोंसे छुटकारा पा जाता है तो हे योगी ! बहुत पूछनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि राग भावका प्रसार रुक जाता है तो वह (आत्म-भाव) सहज उत्पन्न हो जाता है ॥ ५४ ॥

पुद्गल अन्य है और जीव (आत्मा) अन्य है और समस्त व्यवहार भी अन्य है। अतः पुद्गल (जड़) का त्याग कर और आत्माको ग्रहण कर। शीघ्र ही संसार-सागरसे पार हो जायेगा ॥ ५५ ॥

जो (नास्तिक जीवके अस्तित्वको नहीं मानते हैं और जो स्पष्ट रूपसे जीव (आत्मा) को नहीं जानते हैं, वे संसारसे नहीं छूटते हैं— ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ ५६ ॥

रत्न[१], दीपक[२], सूर्य[३], दही-दूध-घृत[४], पाषाण[५], सोना[६], चाँदी[७], स्फटिकमणि[८] और अग्नि[९]—इन नौ दृष्टान्तोंसे जीव (आत्मा) को जानना चाहिये ॥ ५७ ॥

शून्य (अर्थात् परपदार्थोंसे सम्बन्ध रहित) आकाशके समान जो देहादिकको (आत्मासे) भिन्न जानता है, वह शीघ्र ही परमब्रह्मका अनुभव करता है और केवलज्ञानका प्रकाश करता है ॥ ५८ ॥

हे जीव ! जिस प्रकार आकाश शुद्ध है, वैसे ही आत्मा शुद्ध कहा गया है, किन्तु आकाश जड़ है और आत्मा चेतना लक्षण वाला ॥ ५९ ॥

---

१. आत्मा रत्नके समान अनुपम है।

२. आत्मा दीपकके समान स्व-परप्रकाशक है।

३. आत्मा सूर्यके समान प्रकाशमान और प्रतापवान है।

४. आत्मा दूध, दही, घी के समान है। आत्माके दूध सदृश शुद्ध स्वभावके मनन करनेसे आत्माकी भावना दृढ़ होती है। आत्माकी भावनाकी जागृति ही दहीका बनना है। फिर जैसे दहीके बिलोनेसे घी सहित मक्खन निकलता है, वैसे ही आत्माकी भावना करते-करते आत्मानुभव होता है; जो परमानन्द देता है।

५. आत्मा पत्थरके समान दृढ़ और अमिट है।

६. आत्मा शुद्ध स्वर्णके समान प्रकाशमान ज्ञान-धातुसे निर्मित है।

७. आत्मा शुद्ध चाँदीके समान परम निर्मल है।

८. आत्मा स्फटिकमणिके समान निर्मल और परिणमनशील है।

९. आत्मा अग्निके समान सदा जलता रहता है।

—ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद, योगसार टीका; पृष्ठ १६२-१६३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नासाग्र दृष्टिकर जो लोग आभ्यन्तरमें शरीर रहित (शुद्ध) आत्मा को देखते हैं, उनका फिर जन्म नहीं होता और न वे माताका दूध पीते हैं ॥ ६० ॥

शरीर रहित आत्माको उत्तम शरीर समझो और इस (पौद्‌गलिक) शरीरको जड़ समझो, मिथ्या-मोहका त्याग करो और मुक्ति रूप नितम्बिनी (स्त्री) का सेवन करो ॥ ६१ ॥

आत्मासे आत्माका अनुभव करते हुये कौनसे फलकी प्राप्ति नहीं होती है ? अरे ! इससे केवलज्ञान भी हो जाता है और शाश्वत सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ६२ ॥

जो मुनि परभावका त्यागकर अपनी आत्माको आत्माके द्वारा जानते हैं, वे केवलज्ञान प्राप्तकर संसारसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ६३ ॥

वे धन्य हैं, भगवान् हैं, ज्ञानी हैं, जो परभावका त्याग करते हैं और लोकालोक प्रकाशक अपने निर्मल आत्माको जानते हैं ॥ ६४ ॥

सागार (गृहस्थ) अथवा अनगार (साधु) —जो कोई भी अपनी आत्मामें निवास करता है, वह शीघ्र ही सिद्ध-(सिद्धि-) सुखको प्राप्त करता है—ऐसा जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है ॥ ६५ ॥

बिरले विद्वान् ही तत्त्वको जानते हैं, बिरले व्यक्ति ही तत्त्वका श्रवण करते हैं, बिरले व्यक्ति ही आत्म-तत्त्वका ध्यान करते हैं और बिरले ही (तत्त्वार्थ श्रद्धान रूप) तत्त्वको धारण करते हैं ॥ ६६ ॥

ये परिजन मेरे नहीं हैं, ये सुख-दुःखके कारण हैं इस प्रकारका चिन्तन करते हुये (जीव) संसारका शीघ्र ही छेद करता है ॥ ६७ ॥

इन्द्र, फणीन्द्र और नरेन्द्र भी जीवके शरण नहीं होते हैं; इस प्रकार जीवको अशरण जानकर श्रेष्ठ मुनि आत्माके द्वारा आत्माको जानते हैं ॥ ६८ ॥

जीव अकेला पैदा होता है और अकेला ही मरता है तथा किसी भी सुख दुःखको अकेला ही भोगता है । नरक भी जीव अकेला ही जाता है तथा निर्वाणको भी अकेला ही प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥

जीव अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही मरेगा, अतः परभावका त्याग करो, इससे शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त होगा ॥ ७० ॥

जो पाप है, उसको जो पाप कहता है, उसे सब कोई जानता है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किन्तु जो पुण्यको भी पाप कहता है—ऐसा कोई विरला ही विद्वान् है ॥ ७१ ॥

हे पण्डित ! जिस प्रकार लोहेको जञ्जीर है, उसीप्रकार सोनेको भी जान। जो शुभ, अशुभ भावोंका सञ्चय करते हैं, वे ज्ञानी नहीं होते हैं ॥ ७२ ॥

हे जीव ! जब तेरा मन निर्ग्रन्थ है, तब तूँ भी निर्ग्रन्थ है और जब तूँ निर्ग्रन्थ है तो तुझे मोक्ष-मार्ग प्राप्त होगा ॥ ७३ ॥

जैसे बरगदके पेड़के मध्यमें वीज स्पष्ट रूपसे है, उसी प्रकार बीज के मध्य बरगदका पेड़ है, ऐसा निश्चयसे जान। वैसे ही देहके मध्य उस देवता (परमात्मा) को जान, जो तीनों लोकों में प्रधान है ॥ ७४ ॥

जो जिनेन्द्र भगवान् हैं, वही मैं हूँ और वही जीव है, ऐसा भाव भ्रान्ति रहित है और हे योगी ! मोक्षका कारण कोई अन्य तन्त्र-मन्त्र नहीं है ॥ ७५ ॥

दो, तीन, चार, पाँच, नौ, सात, छः, पाँच और चार गुण सहित— ये लक्षण जिसमें हो उसे परमात्मा जानना चाहिये ॥ ७६ ॥

दो (राग और द्वेष) को छोड़कर दो गुण (ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग) सहित जो अपनी आत्मा में निवास करता है. वह शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त होता है—ऐसा जिन स्वामीने कहा है ॥ ७७ ॥

तीन (राग, द्वेष, मोह) रहित और तीन (रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) सहित जो अपनी आत्मामें निवास करता है, वह शाश्वत सुखका भाजन है—ऐसा जिनेन्द्र भगवान्ने कहा है ॥ ७८ ॥

चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) और चार संज्ञा (आहार, भय, मैथुन, परिग्रह) रहित तथा चार गुण (अनन्त चतुष्टय—अनन्तज्ञान. अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य) सहित (शुद्ध) आत्मा कहा गया है। हे जीव ! तूँ ऐसा आत्मा जान, जिससे तूँ परम पवित्र हो सके ॥ ७९ ॥

जो (पञ्चेन्द्रियके पाँच विषयों एवं हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, और परिग्रह रूप पाँच अव्रतों—इन) दससे रहित और (पञ्चेन्द्रियोंके दमन तथा पञ्च महाव्रतोंके धारण रूप) दस सहित तथा (उत्तमक्षमादि) दस गुण सहित है, उसे निश्चयसे आत्मा कहा गया है ॥ ८० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्माको दर्शन और ज्ञानमय जानो तथा आत्माको ही चारित्र समझो। आत्मा ही संयम है, तप है, शील है और आत्मा ही प्रत्याख्यान है ॥ ८१ ॥

जो आत्मा और परको जानता है, वह भ्रान्ति रहित होकर परका त्याग करता है, उसे ही तूँ संन्यास जान—ऐसा केवलज्ञानीने कहा है ॥ ८२ ॥

जिससे देखा जाता है, वह दर्शन है और निर्मल महान् आत्मा ज्ञान है तथा जो बार-बार आत्माकी भावना करना है, वह पवित्र चारित्र है ॥ ८३ ॥

रत्नत्रय संयुक्त जीव ही उत्तम तीर्थ है और हे योगी ! वही (रत्न-त्रय) मोक्षका कारण कहा गया है, अन्य कोई तन्त्र-मन्त्र मोक्षका कारण नहीं है ॥ ८४ ॥

जहाँ आत्मा है, वहीं समस्त गुण हैं—ऐसा केवली भगवान् कहते हैं। इसी कारण समस्त जीव स्पष्ट रूपसे निर्मल आत्माको जानते हैं ॥ ८५ ॥

एकाकी (निर्ग्रन्थ) इन्द्रियों (इन्द्रिय-विषयों) से विरक्त होकर मन, वचन और काय—इन तीनोंकी शुद्धिकर आत्माको आत्मा जान, जिससे तूँ शीघ्र ही मोक्ष-सिद्धिको प्राप्त करेगा ॥ ८६ ॥

यदि बद्धको मुक्त जानेगा (अथवा आत्माको बद्ध और मुक्त रूप जानेगा) तो निश्चयसे तूँ (कर्म-) बन्धको प्राप्त होगा और यदि सहज स्वरूप आत्मामें रमण करेगा तो शान्त मोक्षको प्राप्त करेगा ॥ ८७ ॥

हे सम्यग्दृष्टि जीव ! तेरा दुर्गतिमें गमन नहीं होता है और यदि (पूर्वकृत कर्मवशात्) जाता भी है तो कोई दोष नहीं है, अपितु पूर्वकृत कर्मका क्षय होता है ॥ ८८ ॥

समस्त लोक व्यवहारका त्यागकर जो आत्म-स्वरूपमें रमण करता है वह सम्यग्दृष्टि है और वह शीघ्र ही संसारसे पार हो जाता है ॥ ८९ ॥

जहाँ अजर-अमर और गुणोंके समूहका स्थान आत्मा स्थिर हो जाता है, वहाँ वह आत्मा नवीन कर्मोंसे बद्ध नहीं होता है और पूर्व सञ्चित कर्मोंका विलय हो जाता है ॥ ९० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसके सम्यक्त्व प्रधान है, वही ज्ञानी है और वही तीनों लोकोंमें प्रधान है। वह शीघ्र ही शाश्वत सुखके निधान केवलज्ञानको प्राप्त करता है ॥ ९१ ॥

जिस प्रकार कमलिनी पत्र कभी भी जलसे लिप्त नहीं होता है, उसी प्रकार यदि जीव आत्म-स्वभावमें लीन रहता है तो कर्मोंसे लिप्त नहीं होता है ॥ ९२ ॥

जो ज्ञानी समभाव रूप सुखमें लीन होकर बार-बार आत्माको जानता है, वह कर्मोंका क्षयकर शीघ्र ही निर्वाणको प्राप्त करता है ॥ ९३ ॥

हे जीव ! पुरुषाकार-प्रमाण यह आत्मा पवित्र है, निर्मल गुणोंसे युक्त है, यह निर्मल तेज स्फुरित करता हुआ दिखलाई देता है ॥ ९४ ॥

जो अपवित्र शरीरसे भिन्न शुद्ध आत्माको जानता है वही अविनाशी सुखमें लीन होता है और समस्त शास्त्रोंको जानता है ॥ ९५ ॥

जो आत्मा और परको नहीं जानता है तथा न ही परभावका त्याग करता है, वह समस्त शास्त्रोंको जानता हुआ भी मोक्ष-सुखको प्राप्त नहीं करता है ॥ ९६ ॥

जो लोग समस्त विकल्पोंका त्यागकर परम-समाधिको प्राप्त करते हैं, वे आनन्दका अनुभव करते हैं, उसीको मोक्ष-सुख कहते हैं ॥ ९७ ॥

हे पण्डित ! जिनेन्द्र भगवान्‌ने जो पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यानोंको कहा है, उन्हें जान, जिससे तूँ शीघ्र ही परम पवित्र हो सके ॥ ९८ ॥

समस्त जीव ज्ञानमय हैं—इस प्रकार जो समभाव है, वही सामायिक समझो—ऐसा जिनेन्द्र भगवान्‌ने कहा है ॥ ९९ ॥

राग और द्वेष—इन दो का त्यागकर जो समभावका अनुभव होता है, उसे सामायिक समझो—ऐसा केवली भगवान्‌ने कहा है ॥ १०० ॥

हिंसादिकका परित्याग कर जो अपने आत्मामें उपयोगको लगाता है, उसे द्वितीय चारित्र (छेदोपस्थापना) जानो, यह पञ्चम गतिमें ले जाता है ॥ १०१ ॥

मिथ्यात्वादिके परिहारसे जो सम्यग्दर्शनकी शुद्धि होती है उसे परिहार-विशुद्धि संयम जानो, इससे शीघ्र ही मोक्ष-सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १०२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्ष्म लोभका नाश होनेसे जो परिणामोंका सूक्ष्म होना है, उसे सूक्ष्म-(यथाख्यात-) चारित्र जानो, वह शाश्वत सुखका स्थान है ॥ १०३ ॥

निश्चयनयसे आत्मा ही अरिहन्त है, उसीका प्रकट होना सिद्ध है, उसीको आचार्य जानो, वही उपाध्याय है और उसीको मुनि समझो ॥ १०४ ॥

वही आत्मा शिव है, शङ्कर है, विष्णु है, वही रुद्र है, वही बुद्ध है, वही जिनेन्द्र भगवान् है, वही ईश्वर है, वही ब्रह्म है और वही आत्मा सिद्ध भी है ॥ १०५ ॥

इन लक्षणोंसे लक्षित जो परम निष्कल देव है तथा देहके मध्यमें विराजमान जो आत्मा है, उन दोनोंमें भेद नहीं है ॥ १०६ ॥

जिनेन्द्र भगवान्का कहना है कि जो सिद्ध हो गये हैं और जो सिद्ध होयेंगे तथा जो सिद्ध हो रहे हैं, वे निश्चयसे आत्मदर्शनसे हुये हैं—ऐसा भ्रान्ति रहित जानो ॥ १०७ ॥

संसारसे भयभीत जोगीचंद (योगीन्दुदेव) मुनिने आत्म-सम्बोधनके लिये एकाग्र मनसे इन दोहोंकी रचना की है ॥ १०८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद्यानुक्रमणिका*

अजरु अमर गुण-गण णिलउ	९०
अप्पइँ अप्पु मुणंतहँ	६२
अप्प सरूवइ जो रमइ	८९
अप्पा अप्पइ जो मुणइ	३४
अप्पा अप्पउ जइ मुणहि	१२
अप्पा-दंसणु एक्कु परु	१६
अप्पा दंसणु णाणु मुणि	८१
अरिहंतु वि सो सिद्धु फुडु	१०४
असरीरु वि सुसरीरु मुणि	६१
अह पुणु अप्पा णवि मुणहि	१५
आउ गलइ णवि मणु गलइ	४९
इंद-फणिंद-णरिंदय	६८
इक्क उपज्जइ मरइ कु वि	६९
इक्कलउ इंदिय रहियउ	८६
इक्कलउ जाइ जाइसिहि	७०
इच्छा रहियउ तव करहि	१३
इहु परियण ण हु महतणउ	६७
एव हि लक्खण लक्खियउ	१०६
कालु अणाइ अणाइ जिउ	४
केवलणाण-सहाउ सो	३९
को सुसमाहि करउ को अंचउ	४०
गिहि-वावार परिट्ठिया	१८
घाइ-चउक्क हनेवि किउ	२
चउ-कसाय-सण्णा-रहिउ	७९
चउरासी लक्खहिँ फिरिउ	२५
छह दव्वइँ जे जिण कहिया	३५
जं वडमज्झहँ बीउ फुडु	७४
जइ जर-मरण करालियउ	४६
जइ बद्धउ मुक्कउ मुणहि	८७
जइ बीहउ चउ गइ-गमणा	५
जइया मणु णिग्गंथु जिय	७३
जह लोहम्मिय णियड बुह	७२
जह सलिलेण ण लिप्पियइ	९२
जहिँ अप्पा तहिँ सयलगुण	८५
जाम ण भावहि जीव तुहुँ	२७
जिणु सुमिरहु जिणु चिंतवहु	१९
जीवाजीवहँ भेउ जो	३८
जे णवि मण्णहिँ जीव फुडु	५६
जे परभाव चएवि मुणि	६३
जे सिद्धा जे सिज्झहिहिँ	१०७
जेहउ जज्जरु नरय घरु	५१
जेहउ मणु विसयहँ रमइ	५०
जेहउ सुद्ध अयास जिय	५९
जो अप्पा सुद्ध मुणेइ	९५
जो जिण सो हउँ सो हि जिउ	७५
जो जिणु सो अप्पा मुणहु	२१
जो णवि जाणइ अप्पु परु	९६
जो णिम्मल अप्पा मुणइ	३०
जो णिम्मलु अप्पा मुणहि	३७
जो तइलोयहँ झेउ जिणु	२८
जो परमप्पा सो जि हउँ	२२
जो परियाणइ अप्प परु	८
जो परियाणइ अप्पु परु	८२
जो पाउ वि सो पाउ भणि	७१
जो पिंडत्थु पयत्थु बुह	९८
जो सम-सुक्ख णिलीणु बुहु	९३
जो सम्मत्त-पहाणु बुहु	९१
णासग्गिँ अब्भिंतरहँ	६०

* पद्य के आगे अङ्कित संख्या पद्य क्रमाङ्क की सूचक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिच्छइँ लोय-पमाणु मुणि	२४
णिम्मल-झाण-परट्ठिया	१
णिम्मलु णिक्कलु सुद्धु जिणु	९
ताम कुतित्थइँ परिभमइ	४१
तित्थइ देवलि देवु जिणु	४५
तित्थहिँ देवलि देउ णवि	४२
तिपयारो अप्पा मुणहि	६
तिहिँ रहियउ तिहिँ गुण-सहिउ	७८
दंसणु जं पिच्छियइ बुह	८३
देहादिउ जे पर कहिया	११
देहादिउ जे पर कहिया	१०
देहादिउ जो परु मुणइ	५८
देहा-देवलि देउ जिणु	४३
धंधइ पडियउ सयल जगि	५२
धण्णा ते भयवंत बुह	६४
धम्मु ण पढियइँ होइ	४७
पुग्गलु अण्णु जि अण्णु जिउ	५५
पुण्णि पावइ सग्ग जिउ	३२
परिणामे बंधु जि कहिउ	१४
पुरिसायार-पमाणु जिय	९४
बे छंडिवि बे-गुण-सहिउ	७७
बे ते चउ पंच वि णवहँ	७६
बे-पंचहँ रहियउ मुणहि	८०
मग्गण गुण ठाणइ कहिया	१७
मणु इंदिहि वि छोडियइ	५४
मच्छादिउ जो परिहरणु	१०२
मिच्छा दंसण-मोहियउ	७
मूढा देवलि देवु णवि	४४
रयणत्तय संजुत्त जिउ	८४
रयण दीउ दिणयर दहिउ	५७
राय-रोस बे परहरिवि	४८
राय-रोस बे परिहरिवि	१००
वउ तउ संजमु सोलु जिय	३३
वज्जिय सयल वियप्पयहँ	९७
वय-तव-संयम-मूलगुण	२९
वय तव संजमु सीलु जिय	३१
विरला जाणहि तत्तु बुह	६६
संसारहँ भयभीयएण	१०८
संसारहँ भयभीयहँ	३
सत्थ पढ़ंतहँ ते वि जड	५३
सम्माइट्ठी जीव तुहँ	८८
सव्व अचेयण जाणि जिय	३६
सव्वे जीवा णाणमया	९९
सागारु वि णागारु कु वि	६५
सुद्ध-पएसहँ पूरियउ	२३
सुद्धप्पा अरु जिणवरहँ	२०
सुद्धु सचेयणु बुद्धु जिणु	२६
सुहुमहँ लोहहँ जो विलउ	१०३
सो सिउ संकरु विण्हु सो	१०५
हिंसादिउ परिहारु करि	१०१

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दानुक्रमणिका*

अग्नि २१
अचक्षुदर्शन ७
अजीव १३, १४
अणुव्रत ६
अधर्म द्रव्य ३, १३
अधोलोक २४
अनन्तचतुष्टय १, २६
अनन्तज्ञान १, २७
अनन्तदर्शन १, २७
अनन्तवीर्य १, २७
अनन्तसुख १, २७
अनन्तानुबन्धी ६
अनशन ११, १२
अनागार २३
अनाहारक ७
अनिवृत्तिकरण ७
अनुभयवचन ६
अन्तरात्मा २
अन्तराय १
अपकाय ६
अपूर्वकरण ७
अप्रमत्त ७
अभव्य ७
अभ्यन्तरतप १२
अयोगीजिन ७
अरिहन्त ३४
अर्हंत १
अवधिज्ञान ७
अवमोदर्य १२
असत्यवचन ६
अशुभलेश्या ७
असंज्ञी ७
असंयत ७
असंयम ७, ११
आकाशद्रव्य ३, १३, २१
आकिंचन्य २७
आगार २३
आचार्य ३४
आत्मप्रदेश २०
आत्मा ४, ५, ६, ९, १४, १५, १८ से २३, २६ से २९, ३१, ३२, ३४ ३५
आयु १, १७, १८
आर्जव २७
आस्रव १३
आहार २७
आहारक ३, ६, ७
आहारक मिश्र ३, ६
इंद्र १९, २४
इंद्रिय ६, १७, १८
इंद्रिय संजम १२
ईसफाटिक २१
उपशांतमोह ७
उपाध्याय ३४
उभयमन ६
औदारिक ३, ६
औदारिक मिश्र ३, ६
औपशमिक ७

* शब्द के सामने अङ्कित संख्या पृष्ठाङ्क की सूचक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म ३१, ३४
कषाय ३, ६, २७
कापोत ७
काम २२
काय ६, २९
कायक्लेश १२
कायोत्सर्ग १२
कार्माण ३, ६
कालद्रव्य ३, १३
कुअवधि ७
कुज्ञान ३, ७
कुतीर्थ १५
कुदर्शन ३
कुमति ७
कुश्रुति ७
कृष्ण (लेश्या) ७
केवलज्ञान ७, १०, १४, २१, २२, ३०
केवलज्ञानी २८, ३३
केवलदर्शन ७
केवली १५, २९, ३३
क्रोध ३, ६, २२, २७
क्षमा २७
क्षायिक ७
क्षायोपशमिक ७
क्षीणमोह ७
गति २, ६
गुणस्थान ७, १०
गुप्ति ११
गोत्र १
घातिया कर्म १
घ्रान ६
चक्रवर्ति १९
चक्षु ६
चक्षुदर्शन ७
चारित्र ६, ७, २७, २८
छेदोपस्थाना ७, ११
छेदोपस्थापना चारित्र ३३
जिन १०, ३५
जिनदेव १५, १६
जिन भगवान् ३४
जिनरूप ३
जीव ६, ७, १३, १४, २०, २१, २२, २४, २९, ३१, ३२
जीवद्रव्य १३
जुगुप्सा ६
जोग ६
जोगसार १
जोगी मुनिचंद्र ३५
जोगींद्रदेव १, १४, ३५
जोगेंद्रदेव १
जोनि ६, १०
ज्ञान ६, ७
ज्ञानावरण १
ज्ञानोपयोग २६
तंत्र-मंत्र २६
तत्त्व २३
तत्त्वज्ञान २३
तप ५, ६, ७, ११, २७
तियंच ६
तिर्यंचगति २९
तीर्थ १५, १६
तेजकाय ६
त्याग २७
त्रस १२
त्रसकाय ६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थावर १२
दर्शन ७, २८
दर्शनावरण १
दर्शनोपयोग २६
दशलक्षणधर्म २७
दही-दूध-घ्रत २१
दान ६
दीपक २१
देवगति ६
देशसंयत ७
देहुरा १६
द्रव्यार्थिक २९
द्रव्यार्थिक नय २६, २७
द्वेष ३, २७
धरनेंद्र १९
धर्म १७
धर्मद्रव्य ३, १३
ध्यान १२
नपुंसकगति २९
नपुंसकवेद ६
नरक ६, १२, १८, २४
नरकगति २९
नरेंद्र २४
नाम १
नास्तिक २०
निर्ग्रन्थ २५
निर्जरा १३
निर्वाण ४, ९, १८, १९, २४, २६, ३१
निश्चयनय ६, ७, ९, ११, १२, ३४
नील (लेश्या) ७
नोकर्म ४
नोकषाय ६
पंचमगति १७, ३३
पंडित-आत्मा ३
पदस्थ-ध्यान ३२
पदार्थ १३
पद्म (लेश्या) ७
परभाव २२, २४, २८
परमगति ५
परमब्रह्म २१
परमसमाधि ३२
परमात्मा १, २, ४, ९, ११, १८, २५, २६, ३४
परमेष्ठी ७, ३४
परिग्रह २५, २७
परिणाम ५
परिहारविशुद्धि ७, ११, ३३
पाप १२, १३, २४, २५
पाषाण २१
पिंडस्थ-ध्यान ३२
पोत (लेश्या) ७
पुण्य १२, १३, २४, २५
पुद्गल ३, १३, २०
पुरुषवेद ६
पूजा ६
पृथ्वीकाय ६
प्रत्याख्यान २७
प्रमत्त ७
प्रायश्चित्त १२
फणेंद्र २४
बंध ५, १३, २४, २९
बहिरात्मा २, ३, ४, १२
बाह्यतप १२
बुद्ध ३, १०, ३४
ब्रह्मचर्य २७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मा ३४
भय ६, २७
भव्य ७, १६
मंत्र-तंत्र २८
मध्यलोक २४
मतिज्ञान ७
मन १७, २९
मनःपर्ययज्ञान ७
मनुष्य (गति) ६
महाव्रत ६, ११
मान ३, ६, २२, २७
माया ३, ६, २२, २७
मार्गणा ६, ७
मार्दव २७
मिथ्यात्व ७
मिथ्यात्व प्रकृति २२
मिथ्यादर्शन २, ३
मिश्र ७
मुक्ति ५ १३, १४ २२
मुनि ६, २२, २३, ३४
मलगुण ११
मैथुन २७
मोक्ष ५, ६, ८ से १४ १७, २४,
२६, २८, २९, ३२, ३३
मोक्षगति ५
मोह ३, २२, २७
मोहनीय १
मोहनीयकर्म १८
यथाख्यात ७, ११
योगींद्रदेव १८
रति ६
रत्न १२
रत्नत्रय २७, २८
रसन ६
रसपरित्याग १२
राग ३, २७, ३३
रागद्वेष १७, २२, २६, ३०, ३१,
३२
रुद्र ३४
रूपस्थध्यान ३२
रूपा २१
रूपातीतध्यान ३२
रोस ३३
लेश्या ७
लोक ९
लोकाकास ९
लोभ ३, ६, २२, २७
वचन २९
वनस्पतिकाय ६
वायुकाय ६
विनय १२
विभाव २४
विभावभाव ५, २२, ३२
विविक्त शय्यासन १२
विष्णु ३४
विष्णुरूप ३,
वेद ६
वेदनीय १
वैक्रियक ३, ६
वैक्रियकमिश्र ३, ६
वैयावृत्य १२
व्यवहारनय ६, ७, ९, ११, १३,
३४
व्रत ११, १२
व्रतपरिसंख्यान १२
व्रती ३०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शंकर ३४
शरीर ३
शिव ३, ३४
शील २७
शुक्ल (लेश्या) ७
शुद्धनय ८, १०, २५
शुद्धात्मा १२, २३
शुद्धोपयोग ५
शुभलेश्या ७
शोक ६
शौच २७
श्रावक ६, २३
श्रुतकेवली १५
श्रुतज्ञान ७
श्रोत्र ६
संजम ११, २७
संजुलन कषाय ६
संज्ञा २७
संज्ञी ७
संन्यास २८
संयम ७
संयमासंयम ७, ११
संवर १३
संसारी (आत्मा) ११
सत्य २७
सम्यक्त्व ७, ९, ३०
सम्यक्चारित्र २७ २८
सम्यग्ज्ञान २७, २८
सम्यग्दर्शन ६, ७, २७, २८, २९, ३३
सम्यग्दृष्टी २९, ३०
सयोगीजिन ७
सामायिक ७, ११, ३३
सामायिक चारित्र ३३
सासादन ७
सिद्ध १, ११, १६, ३४, ३५
सिद्धक्षेत्र १५
सिद्धात्मा २३
सील ११
सुमति (समिति) ११
सूक्ष्मसांपराय ७, ११
सूक्ष्मचारित्र ३४
सूर्य २१
सोना २१
स्त्रीवेद ६
स्पर्शन ६
स्वर्ग २४
स्वभावभाव ५
स्वाध्याय १२
हास्य ६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi